प्रकाशक
श्री दि. जैन परवार सेवा समिति,
२३३, जवाहर मार्ग
मालगज चौराह,
इन्दौर

o

सम्पादक :
डॉ जी. सी. जैन

o

मुद्रक :
मीनू प्रिन्टर्स
५८/३, मल्हारगज,
इन्दौर ४५२ ००२

o

मूल्य . **तीन रुपये**

प्राण बचावे
प्राणसुधा
अनेक रोगों की
हाजिर जवाब दवा !
केमिकल वर्क्स, राऊ

आभार

श्री दिगम्बर जैन परवार सेवा समिति लगभग दो वर्षों से सामाजिक, साहित्यिक व सास्कृतिक कार्य-कलापो मे सक्रिय है। परम्परा के अनुसार गत वर्ष ५ अक्टूम्बर, १९७४ को पूज्य वर्णी जन्म-शताब्दी समारोह का भव्य आयोजन सपन्न कर न केवल व्याख्यान सभा से ही, वरन् "विश्व को जैन धर्म की देन" विचार-गोष्ठी के अन्तर्गत अहिसा, अपरिग्रह, अनेकान्त विषयों पर विद्वान वक्ताओ की वक्तृता से सभी को लाभान्वित किया गया। भगवान महावीर के २५ सौंवे निर्वाण-महोत्सव के उपलक्ष में क्षेत्रीय प्रतिभाओं को विकसित करने तथा प्रकाशित करने की दृष्टि से "वीर निर्वाण ज्योति" इस स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है। आशा है इस दिशा में यह एक महत्त्वपूर्ण चरण सिद्ध होगा।

स्मारिका के प्रकाशन मे सम्पादक डॉ जी. सी जैन ने जिस निष्ठा तथा लगन के साथ सुरुचि पूर्वक सम्पादन किया है और जिनके बिना इसका सम्पादित होना सम्भव नहीं था, उनके प्रति समिति विशेष रूप से आभार व्यक्त करती है। अर्थ-सचय आदि विभिन्न कठिनाइयों को हल करने में श्री गोटुलाल जैन ने जो सह-योग प्रदान किया, तदर्थ आभार ज्ञापन करना उपचार मात्र होगा। विज्ञापन आदि उपलब्ध कराने में श्री सोनेलाल जैन और रमेशचन्द्र 'योगेन्द्र' ने जो सहायता दी, वह सचमुच सराहनीय है। मुद्रण-कार्य की देख-रेख कर सशोधन मे मास्टर हुकम-चन्द जैन का आभार है। समिति के अन्य सदस्यो तथा विज्ञापन-दाताओ के प्रति आभार प्रकट करते है। अन्त मे आवरण की साज-सज्जा एव रेखाकन के लिए श्री विष्णु चिचालकर तथा मुद्रण के लिए मीनू प्रिन्टर्स के प्रति भी हृदय से आभार व्यक्त करते है।

शिवरतन कोठारी
अध्यक्ष
श्री दिगम्बर जैन परवार सेवा समिति,
इन्दौर

विषय–सूचि

आध्यात्मिक सन्त पूज्य १०८ श्री गणेश प्रसादजी वर्णी

अध्यक्षीय भाषण देते हुए श्री मिश्रीलालजी गगवाल

मुख्य अतिथि डॉ देवेन्द्र कुमारजी शास्त्री, नीमच

आधुनिक संदर्भ में भगवान महावीर

आज ढाई हजार से अधिक वर्ष बीत चुके, जब भगवान महावीर ने अपने युग के शाश्वत प्रश्नो को तथा समस्याओ को स्थायी समाधान दिया था और लोगो को बताया था कि भौतिक समृद्धि एव सुख-साधनो की वृद्धि से शान्ति नही मिल सकती। सुख-और शान्ति का मूल केन्द्रबिन्दु व्यक्ति है। मनुष्य की वृत्तियाँ निरन्तर सुख या दु ख की ओर पलायन करती रहती है। सुख या दु ख इच्छा मात्र है। मनुष्य इच्छाओ का दास है। किसी-न-किसी इच्छा से प्रेरित होकर मनुष्य कार्य करता है। इच्छा शुभ भी हो सकती है और अशुभ भी हो सकती है। मनुष्य अपनी इच्छाओ के कारण अच्छा या बुरा होता है। अच्छी इच्छाएँ ही मनुष्य को उन्नति की ओर ले जाती है और बुरी इच्छाओ से मनुष्य का पतन हो जाता है। अच्छा काम करने के लिए भी उसके पूर्व इच्छा करनी पडती है और बुरा काम भी बिना इच्छा के नही होता। दोनो ही स्थितियो मे किसी तरह की इच्छा से गुजरना ही पडता है। यहाँ तक ध्यान, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि कोई भी धार्मिक क्रिया कीजिये, इच्छाओ के दौर से गुजरना ही पडता है। मनुष्य इन इच्छाओ से बचना चाहे, तब भी नही बच सकता है।

ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य क्या करे और क्यो करे ? जो यह कहते है कि भगवान् महावीर आत्मस्थ रहे और आत्म-साधना का ही उन्होने उपदेश दिया, वे सच ही कहते है, क्योकि साधना से उन्हे जो उपलब्ध हुआ था, उसी का उपदेश दिया था और जब तक उपलब्धि नही हुई थी, तब तक उपदेश नही दिया था। किन्तु वह उपदेश साधना की सिद्धि का था, केवल आत्मस्थ होने का शुद्ध आत्मानुभूति का था। जन साधारण के लिए उस विशुद्ध आत्मानुभूति का लक्ष्य बनाना भी कठिन हो सकता है, क्योकि वह उसकी समझ के परे है। रात-दिन मनुष्य जिन स्थितियो मे रहता है, उन्हे भोगता है और प्रत्यक्ष रूप से उनका अनुभव करता है, उन्हे असत्य या मिथ्या कह कर झुठलाया नही जा सकता। हाँ, इतना अवश्य है कि ससार के इन बाहरी सुखो की अपेक्षा भीतरी सुख प्रबल है, सहज

है, स्थायी है। उसकी ओर झुकने पर वाहरी अपने आप छूट जाता है , उसे छोडना नही पडता है ; किंतु व्यवहार इससे भिन्न हैं।

भगवान महावीर के समय मे यह एक समस्या थी कि लोग अहिसा को धर्म कहते थे, पर देवी-देवताओ के लिए की जाने वाली हिसा को हिंसा नही मानते थे। इसी प्रकार आज भी सारा ससार यह जानता है कि यदि शस्त्रास्त्रो की निरन्तर होड बढती गई, तो नि शस्त्रीकरण के अभाव मे प्रक्षेपास्त्रो से किसी भी दिन वातो ही बातो मे ससार का विनाश हो जाएगा। किन्तु प्रभुता सम्पन्न देश अपने को महा शक्तिशाली वनाये रखने की प्रतिस्पर्धा मे निरन्तर प्रयत्नशील है। वे अणु विस्फोटो मे अपना एकाधिकार बनाये रखना चाहते है।

यदि मनुष्य ईमानदार नही है, उस काम मे नीति और न्याय नही है, तो वह केवल आत्मानुभूति का ढोग रच कर उन्नति नही कर सकता। मनुष्य धर्मात्मा वनने के पहले एक औसत आदमी बने, तब वह धर्म को जीवन मे स्थान दे सकता है। मन्दिर, देवालय तो उस मैदान के समान है, जहाँ पर इकट्ठे होकर खिलाडी खेल का अभ्यास करते है , इसी प्रकार धार्मिक क्रियाओ का अभ्यास चैत्यालयो मे किया जाता है। परन्तु वह खेल (मैच) की भाँति हमारे जीवन मे उतरना चाहिए।

समाज मे समानता और अधिकार की बाते करने वाले अपने कर्त्तव्यो से कोसो दूर होते जा रहे हैं। केवल कुछ रूढियो तक ही सीमित रह कर मनुष्य अपने को धर्मात्मा समझने लगा है। भगवान महावीर ने इसलिए व्यक्ति के धर्म को ओर समाज के धर्म को एक ही वृक्ष की दो शाखाओ के रूप मे बताया था। व्यक्ति का धर्म निवृत्ति का है, सन्यासी योगी का है और समाज का धर्म प्रवृत्ति का, एक भले नागरिक, सद्गृहस्थ का है।

भगवान महावीर के मुक्ति मार्ग मे एक निश्चित क्रम वतलाया गया है। मनुष्य एक-एक कदम बढा कर आगे बढता है, एक-एक सीढी चढकर ऊपर पहुँचता है। इसी तरह से व्रत, सयम, तप आदि की साधना कर मुक्ति के मार्ग मे लगता है। कोई यह चाहे कि हमे सयम, तप कुछ नही करना पडे, केवल आँख बन्द कर ध्यान कर लेने से मुक्ति हो जायेगी, तो यह समझना नितात भ्रम है। मनुष्य को पहले सदाचारी बनना होगा, अपनी इच्छाओ को घटाना होगा। और इन सबसे जब उसकी मोह वृत्ति कम होगी, तब ध्यान मे मन की चचलता रुकेगी और तभी ध्यान धर्म ध्यान बनेगा। व्यवहार मे, साधनो मे पवित्रता और सयम (नियत्रण) रखना ही धर्म की ओर बढने के लिए प्राथमिक तथा अनिवार्य उपाय है। मनुष्य के जीवन मे शुद्धता आ जाए और वह अपने आप पर नियत्रण कर ले, तो वर्तमान सभी समस्याओ का समाधान सहज ही हो सकता है।

★

नये धार्मिक आदोलन पैदा करने की क्या उपयोगिता है, जबकि मनुष्य के दु ख को दूर करने का उपाय जैन धर्म बताता है। हमे यही लाभ है कि एक प्राचीन एवं भव्य परम्परा बनी हुई है। यह संसार के सभी धर्मो मे प्रथम है, जिसने नैतिक जीवन मे अहिंसा को मुख्य सिद्धांत बताया है। —डा. लुईस रेनु पेरिस

वीर-संस्तवन

—नाथूराम डोगरीय

जय, जगदीश्वर वीर जिनेश !

अनुपम ज्ञान ज्योति चमका कर,
चिर सचित भ्रम तम विघटा कर
सर्व संकुचित भाव मिटाकर दिया दिव्य उपदेश !
जय जगदीश्वर वीर जिनेश !

स्याद्वाद वाणी वर दायक,
शांति, सौख्य, सम्मार्ग - विधायक,
मुक्ति वल्लभा के परिचायक, ज्ञायक अमित अशेष !
जय जगदीश्वर वीर जिनेश !

पापों का दृढ़ दुर्ग तोड़कर,
पाखंडों का मुंह मरोड़ कर,
हृदयहीन अत्याचारो का किया नाम नि शेष !
जय जगदीश्वर वीर जिनेश !

तव आदर्श सुपथ विस्मृत कर,
भीरु हुए हम हे अभयंकर !
जीवन शून्य जो रहे भूपर भार स्वरूप अशेष
जय जगदीश्वर वीर जिनेश !

तव प्रसाद हम नव बल पायें,
कर्मठ कर्म वीर बन जाये,
अतुल आत्म गौरव प्रकटायें, हरे विश्व के क्लेश !
जय जगदीश्वर वीर जिनेश !

बन्धन काट दिये

—नईम

(१)

केवल तन के नही बावरे,
मन के काट दिये !

दुनिया ने जो दिये, उतारे, खूँटी पर टाँगे,
जन के मनोराज्य का स्वामी, चीवर क्यो माँगे ?
पाये जो मोती सागर मे–
सबको बाँट दिये !

करुणा का सागर लहराता, वह दिक्कालातीत,
चलता चला गया चर्या पर, बरखा हो या शीत
राजगृही के नही अकेले,
वन के हाट किये !

त्रिशला की वह कोख धन्य है, धन्य भाग धरती,
मेघ अहिसा के आ बरसे हरियायी परती ।
सिह और गायो के उसने,
सगम-घाट किये !

(२)

भाषा के चालू मुहावरो मे–
अनुवादित नही हो सकोगे तुम !

जननिर्मित्त शब्दो की
अपनी सीमाएँ है,
तुम हो सपूर्ण और
ये दाये-बाये है
रगो, रेखाओ के घेरो मे–
आभासित हो नही सकोगे तुम !

महाकाव्ह करुणा के
छन्द ये अधूरे है,
चौक साँथिये मैने
शब्दो के पूरे है ।
अर्थहीन वाक् के झमेलो मे
परिभाषित हो नही सकोगे तुम !

चन्दन से गधित पर
लिपटाये कहाँ नाग ?
रागो के घेरे से रहा किये
बाहर तुम, वीतराग !
धूप, दीप, अक्षत मेरे ये
आराधित हो नही सकोगे तुम !

तीर्थंकर महावीर का संदेश

पं. नाथूलाल शास्त्री

[हिंसा और संघर्ष का मूल मताग्रह है पूर्वाग्रहों से बंधा हुआ व्यक्ति दूसरों को समझने का प्रयत्न नहीं करता और केवल अपने स्वार्थ में ही डूबा रहता है तीर्थंकर महावीर का यही सन्देश है कि हम से जितना बन सकें उतना त्याग करें, भोगो में न डुबे।]

संसार रूपी महानदी में राग-द्वेष, काम विकार रूप मगर-मत्स्य आदि से मुक्त होने के लिए जो धर्म रूपी सेतु या घाट का निर्माण करते है। जिससे प्रत्येक साधक सुगमता से पार हो सकता है, उन्हे तीर्थंकर कहते है। त्रिकालवर्ती सभी तीर्थंकर शाश्वत सत्य का प्ररूपण करते हुए युगानुकूल आचार व्यवहार आदि के माध्यम से आत्म-विकास के साथ लोकोपकार मे प्रवृत्त हुए। तीर्थंकरो मे स्वय पर विजय प्राप्त कर अन्य जीवो को आत्म साधना का सुपरिचित मार्ग वतलाया। जैन धर्म जन धर्म है। इस सनातन भव्य मन्दिर के अहिसा, अनेकान्त, स्याद्वाद और अपरिग्रह ये चार महान स्तम्भ है। भगवान महावीर या उनके पूर्व तीर्थंकरो ने इसका अपने युग के अनुरूप जीर्णोद्धार किया है; न कि नवीन निर्माण। आचार मे अहिसा, विचार मे अनेकात, वाणी मे स्याद्वाद और समाज मे अपरिग्रह से इस लोक हितकारी शाश्वत धर्म का सहज ही प्रचार प्रसार हो सकेगा।

जैन धर्म सर्वोदय या विश्व धर्म इसलिए है कि वह प्राणी मात्र के कल्याण के लिए है। भगवान महावीर आदि तीर्थंकरो ने मनुष्य जाति के लिए नही, वरन् समस्त प्राणियो के विकास और निर्माण का माध्यम अहिसा मानकर उसे स्वय आरम्भ कर परिवार, जाति, समाज, राष्ट्र और विश्व को विस्तृत कर सबके हृदय मे आत्मीयता को जाग्रत किया और इससे विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त

किया जब 'जीवो जीवस्य जीवनम्' के अनुसार एक प्राणी दूसरे प्राणी के रक्त का प्यासा बना हुआ था। तब अहिसा के आदर्श–मार्ग द्वारा प्राणी मात्र का स्वभाव अहिसा है। इस हृदय की आवाज को सर्वत्र प्रसारित कर त्रस, स्थावर सभी जीवो के साथ मैत्री भाव या सहानुभूति की जो 'सर्व प्रजाना आत्मवत् सर्वभूतेपु' के रूप मे सर्व सौख्य प्रदान सिद्ध हुआ। तीर्थकर महावीर चैत्र सुदी तेरस दि २७ मार्च ई ५९९ चन्द्रवार को रात्रि के अन्तिम पहर मे वैशाली के कुण्डपुर मे वैशाली गणतन्त्र के अधिनायक महाराज चेरक की पुत्री और महाराजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। वर्द्धमान ज्ञात्रीवशी क्षत्रिय थे। सभी तीर्थकर क्षत्रिय हुए है। उपनिपदो मे आत्म विद्या के उपदेष्टा क्षत्रिय बताये गये है। *भारत की प्रचीन सस्कृति और सभ्यता* श्रमण धारा के रूप से काशी, कौशल, मगध, अग और बग मे फैली हुई थी। श्रमण धारा श्रमण सस्कृति या निवर्तक धर्म पहले से ही इस देश मे विद्यमान था। प्रवर्तक धर्म के मिलने से भारतीय सस्कृति के दोनो अग अविभक्त रूप मे स्थिर हो गये, जिस प्रकार आत्मा और शरीर अथवा निश्चय और व्यवहार का सम्मेलन दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार भारतीय सस्कृति ने भीतरी और बाहरी सुख-शाति का मार्ग दिखलाकर अपना आदर्श स्थापित किया। एक ओर से नि श्रेयस, तो दूसरी ओर से लौकिक अभ्युदय का उपाय बताया गया। इस प्रकार भौतिक और आध्यात्मिक दोनो विचार धाराओ के समन्वय से तथा परस्पर आचार-विचार के आदान प्रदान से भारत को अटूट शक्ति मिली। प्रवर्तक धर्म अनुयायीओ (आर्यो) द्वारा धर्म के नाम पर देवी-देवताओ को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ और बलिदान मे होने वाली हिसा को बन्द कराने मे निवर्तक धर्म के उपदेष्टा क्षत्रिय तीर्थकरो मे भगवान नेमिनाथ, भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर न काफी प्रयत्न किया और वर्ण भेद तथा ईश्वरवाद (जगत कर्त्तव्य) द्वारा उत्पन्न हुए घृणा भाव एव अन्ध विश्वास को मिटाने मे बहुत कुछ सफलता प्राप्त की। भारत मे और बाहर क्षत्रिय तीर्थकरो के अनुयायी दिगम्बर श्रमणो मे विहार कर धर्म का प्रचार किया, जिससे प्रमाण उपलब्ध होते है। यह समन्वय और सहिष्णुता का परिणाम है, जो दोनो धर्म अनुयायी भारत मे साथ-साथ रह रहे है। समन्वय सहिष्णुता, उदारता, अनेकातवाद, स्याद्वाद और अहिसा ये सब पर्यायवाची नाम है इस देश की एकता इसी से सभव है और क्षत्रिय तीर्थकरो ने यही प्रयास किया है। अशोक, हर्पवर्धन, गाधीजी आदि ने भी अनेकात या की सेवा मे अपना जीवन समर्पित किया था। ससार मे जो आज और पहले भी अशान्ति या युद्ध दिखलाई पडे। उनका एक मुख्य कारण एक वाद को मानने वालो द्वारा दूसरे वादो के मानने वालो को गलत समझना है। हिसा और सघर्ष की जड यह मताग्रह रहा है। जैन दर्शन ने जन साधारण को जीवहिसा से बचाने के लिए अहिसा का महत्त्व बताया जो आचार का स्वरूप है और शारीरिक धरातल पर है। किंतु चितको और विचारको को हिसा कार्य से विरत करने के लिए अनेकातवाद का महत्त्व बताया जो बौद्धिक अहिसा का रूप है यह अनेकान्त सर्व विचार समन्वय द्वारा विश्व मैत्री या सहअस्तित्व की स्थापना करता हुआ साम्प्रदायिकता का विरोधी है।

भगवान महावीर के २५ सौ वे निर्वाण महोत्सव और इस महावीर जयन्ती के विशिष्ट अवसर पर दु खपीडित विश्व को उनका यही संदेश प्रसारित करना है कि जैसे राजकुल मे उत्पन्न होते हुए भी वे योगवादी नही बने. अपनी प्रजा का रक्त नही चूसा। लोकहित के लिए उन्होने अपने आचार, विचार के समन्वय से मुक्ति का द्वार खुला कर दिया उसी प्रकार यदि सुखी होना चाहते हो तो भोगवादी न बनकर त्याग को जीवन मे स्थान दे। अपने पास जो भी सग्रह हो, उसे दूसरो मे वितरित कर उनके

साथ उपभोग करे। जो रोटी बॉटकर खाना और उसका आनन्द लेना जानता है उसे हम भगवान की देशना के शब्दों मे अपरिग्रह कहते है 'परस्परो गृहो जीवानाम्' इस आचार्य उमास्वामी के सूत्र का अभिप्राय यह है कि समस्त प्राणी परस्पर सयोग से ही जीवित रह सकते है। हिसा, बैर या शोषण से जीवन की उपलब्ध असभव है। ससार का सुधार या धर्म का प्रचार वही व्यक्ति कर सकता है, जो स्वय सुधरा हुआ है। और अपनी आत्मा को सुसस्कृत बना चुका है। विश्व मे बढती हुई अमानवीय प्रवृति और युद्ध की विभीषिकाओ को दूर करने मे समर्थ केवल भौतिक तत्व ज्ञान नही, वल्कि अपने आचरण द्वारा उन्नत व्यक्तित्व ही समर्थ है। महात्मा गाधी ने अहिसा का प्रतिपादन अपने जीवन को अहिसक बनाकर किया था।

विदेशो की अपेक्षा हमारे धर्म प्रधान देश मे भ्रष्टाचार और अनैतिकता सर्व क्षेत्रो मे फैली हुई है। स्वराज्य मिलने पर भी यहाँ पर स्वराज्य नही आ सका। जो सत्ताधीश है, ऊँचे पदो पर प्रतिष्ठित है, वह पद लिप्सा के साथ भोग और अर्थसग्रह की ओर झुके हुए है। साधारण जनता जब उन्हे देखती है, तो वह उनकी देखा-देखी करने की कोशिश करने लगती है। आज हम अत्यधिक विपन्नावस्था मे है। अनाज और दैनिक उपयोग की वस्तुओ के भाव इतने अधिक बढ गये है कि देश की अधिकाश जनता खरीद नही सकती, जिनके पास वस्तुओ का सग्रह है, उनका सहयोग प्राप्त नही होता। देश मे सामुदायिक हित के वजाय लाभ पर अधिक जोर होने से सकट बढता ही जा रहा है। यद्यपि आध्यात्मिक दृष्टि से वैयक्तिक मुक्ति मानव जीवन का सबसे बडा लक्ष्य है, पर व्यवहारिक दृष्टि से समाज मे रहकर लोक सेवा करना प्रमुख कर्त्तव्य है। यह सब हित मे ही सम्मिलित है। अपने समाज व देश के भाइयो का शोषण करके कोई शाति प्राप्त नही कर सकता। उसका पूजा-पाठ या धर्म साधन निरर्थक है। धर्मायतन मन्दिर मे जो हम पाठ सीखते है बाहर उसका परीक्षण है। पंच पाप के त्याग की भावना जीवन मे उतारना चाहिए। भ्रष्टाचार, काला बाजार, संग्रह वृद्धि, सट्टा रिश्वत, टेक्स चुराना, मिलावट, कम ज्यादा मोल तोल, अधिक ब्याज उपजाना, गैर हाजिर का राशन लेना, वाहनो मे बिना टिकिट सफर करना आदि सभी बुराइयाँ इन्ही पच पापो के अन्तर्गत है। अत. आचार-विचार को शुद्ध बनाकर पवित्र जीवन व्यतीत करने मे मानव पर्याय की सफलता है। सच्चे नागरिक भी ऐसे ही व्यक्ति कहलाते है। अपने द्वारा ही होने वाले उपद्रव बद कराना समाज या देश की बहुत बड़ी सेवा है। अपने व्यक्तित्व सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन मे आई हुई गदगी को दूर कर सच्चाई और ईमानदारी का मार्ग सहज नही है पर गौरवमय जीवन के लिए और देश की स्थिति मे सुधार करने हेतु इसकी आवश्यकता है, उदरपूर्ति ही जीवन का उद्देश्य नही है। मनुष्य आदर पतिष्ठा और कीर्ति भी चाहता है। धन से ही यश प्राप्त होता है। धन का विशेष सम्मान है, अमीर को सब साधन सुलभ है, कोई बडा अपराध करके भी धन के बल पर मुक्त हो जाता है। ऐसी बातो पर से धन की ओर बढती हुई लालसा के दृष्टिकोण मे परिवर्तन लाना होगा, यह परिवर्तन तभी आवेगा, जब पैसे के कारण प्रभावित न हो। समाज सेवको को न्याय पूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले, प्रमाणित परोपकार परायण एव नि स्वार्थ पुरुषो का सम्मान करना, न भूले और बेईमानी से धन सग्रह कर ऐश आराम की वृत्ति वाले लोलुपी व्यक्तियो को महत्व नही दिया जावे तभी समाज ओर देश मे परिवर्तन आ सकेगा। भगवान महावीर की इस २५ सौ वी निर्वाण शताब्दी के पुनीत प्रसग पर भक्ति या श्रद्धा यही है कि हम न्याय और कीर्ति से विवेक पूर्ण जीवन मे परिवर्तन लावे। हमारा यह स्वराज्य तभी स्वराज्य बनेगा तथा ब्राह्य जीवन की पवित्रता से ही अन्तर की आध्यात्मिकता का बीजारोपण होकर आत्मविकास रूपी अकुरोत्पत्ति होगी।

★

भगवान महावीर तथा ईश-कर्तव्य

पं नाथूराम डोगरीय

यदि ईश्वर ही मनुष्य का सर्जक है और उसके सुख-दुःख का विधाता है, तो व्यक्ति का फिर क्या कार्य और पुरुषार्थ रह जाता है ? भगवान महावीर ने इस पराधीनता की भावना से लोगो को उबारा और सच्ची स्वतन्त्रता का पाठ पढाया।

विश्व की अधिकाश जनता मे यह विश्वास परम्परा से घर किये हुए है कि सम्पूर्ण जगत और उसके पदाथो की रचना किसी अदृश्य शक्ति (भगवान, खुदा या God) ने की है। पहाड, नदी, समुद्र, पृथ्वी, सूर्य, चाँद, ग्रह, नक्षत्र, जन्तु-जगत और उसके शरीर आदि परमपिना परमेश्वर की रचना है, बुद्धिमत्ता और सर्व शक्तिमता का अद्भुत करिश्मा है। कर्तव्य आदि के अनुसार परमात्मा न केवल सृष्टि का निर्माता है, प्रत्युत दुनिया के प्रत्येक होने अनहोने कर्मो मे भी उसकी क्रिया और इच्छा शक्ति ही अनवरत कार्य कर रही है। पानी का बरसना, भूकम्प का आना आदि तो तत्कृत है ही। प्राणियो को सुख-दुख, जीवन-मरण आदि व्याधियाँ सब कुछ उस परमपिता की ही कृपा और अकृपा का परिणाम है। यहाँ जो कुछ भी हुआ, हो रहा और होगा, वह ईश्वराधीन है। यह भी मान्यताहै कि परमेश्वर पूजा से प्रसन्न और निद्रा या उपेक्षा से अप्रसन्न हो कर प्राणियो को स्वर्ग, नर्क आदि भी प्रदान करता है।

इस सम्बन्ध मे भगवान महावीर ने बिना किसी सकोच के जिस सिद्धात का प्रतिपादन किया, उसका सार निम्न प्रकार से है।

सम्पूर्ण चराचर पदार्थो से परिपूर्ण इस जगत मेअनादि अनन्त और इसमे होने वाले विचित्र कार्य एव परिणाम (परिवर्तन) स्वभाविक और स्वतन्त्र

हैं। जगत और उसके पदार्थो की सत्ता स्वय सिद्ध है। परमात्मा या कोई भी व्यक्ति ना तो असत् पदार्थो की उत्पत्ति ही कर सकता और न सत् का विनाश, जो है वह सदा से है और रहेगा और जो पदार्थ मूल मे ही नही है, उसका उत्पादन कभी भी नही हो सकता। इतना होने पर भी प्रत्येक वस्तु मे अन्तरग और बहिरग कारणो से स्वभाविक और वैभाविक अनेक परिवर्तन होते रहते है। भूकम्प, वर्षा, दिन-रात आदि प्राकृतिक जड पदार्थो से परम्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कार्य परम्पराओ की अभिव्यक्तियाँ मात्र है। जगत और दूसरे पदार्थो की रचना करने की परमात्मा को न तो कोई इच्छा ही हो सकती है और न ही इसकी उसे आवश्यकता ही प्रतीत हो सकती है। परमात्मा के वीतराग और परिपूर्ण सुख सम्पन्न एव कृत-कृत्यादि विशेष गुणो के कारण नाना प्रकार के सुखी-दुखी प्राणियो का निर्माण एव उन्हे सुख-दु ख प्रदान करने की सम्भावना भी शतश. विदीर्ण हो जाती है। विशाल विश्व का निर्माण करना और उसमे भी प्राणियो के कार्यो मे रूचि लेकर उन्हे सुख-दु ख प्रदान करना, बिना आकुल-व्याकुल हुए सच्चिानद स्वरुप परमात्मा को प्राप्त करना कदापि सम्भव नही हो सकता और न प्राणियो को दुखी या सुखी बनाने मे परमात्मा की वीतरागता भी भग हुए बिना रह सकती। यदि कहा जाए कि बिना निर्माण किए पदार्थो की उत्पत्ति सम्भव है, तो फिर परमात्मा भी एक पदार्थ है, उसका रचयिता भी किसी अन्य को मानना पडेगा, ऐसी दशा मे परमात्मा का रचयिता कोई अन्य, इस प्रकार अनवस्था दोष का प्रसग नही आता वह स्वय सिद्ध है। तब जगत को स्वय सिद्ध मान लेने मे भी कौनसी आपत्ति हो सकती है। आधुनिक विज्ञान ने तो जगत और उसके पदार्थो को स्पष्टत अनादि अनन्त सिद्ध कर दिया है।

यह प्रश्न प्राणियो के पुण्य-पापादि कार्यो और उनके फलो का। इस विषय मे भगवान महावीर ने कर्म सिद्धात का प्रतिपादन करते हुए आत्मा को स्वय ही अपने कर्मो का कर्ता और भोक्ता सिद्ध किया। जो व्यक्ति जैसे भाव और कार्य करता है, उसके निमित्त से पुद्गल वर्गणाएँ आकर्षित होती हुई स्वय ही कर्म रूप होकर आत्मा से बध को प्राप्त हो यथा समय उदय मे आती है और उनके उदय मे जीव स्वय ही सुख-दु ख के अनुभव द्वारा हर्ष विषाद स्वरुप राग-द्वेष कर पुन नवीन कर्मो का बध कर लेता है, जो आगे यथा समय सुख दुखानुभवन मे मे निमित्त पड़ते है। इस प्रक्रिया मे ईश्वर न तो कोई हस्तक्षेप करता है और न ऐसा करने की उसे कोई आवश्यकता ही है। जो जीव जैसे शुभा-शुभ भाव और कार्य करता है, तदनुसार ही उसे फल प्राप्त होता है। इस प्रकार कर्मो का फल अपने ही शुभा-शुभ भावों पर अवलम्बित है।

भगवान महावीर के उल्लिखित कर्म सिद्धात से भिन्न रहते हुए भी उन्ही के अनुयायी कुछ भोले सज्जन जन अपने ऐच्छिक कार्यो की पूर्ति के लिए वीतराग भगवान की अर्चा-उपासना आदि करते दीख पडते है, तव बडा आश्चर्य होता है। उनकी इस पूजा उपासना मे भक्ति के स्थान पर अपने स्वार्थ सिद्धि का भाव ही प्रधान रहा करता है। यही कारण है जो कोई तो अपने कार्य सिद्धि के उपलक्ष मे भगवान पर छत्र चढाने का सकल्प करता है, तो कोई अमुक अतिशय क्षेत्र के दर्शन यात्रा आदि आदि करने का भाव रखता है. यथार्थता उपासना ओर भक्ति के अभाव मे सौदे की भावना से कार्य करने पर उसका क्या फल हो सकता है, यह विचारणीय है। अपने इच्छित-कार्यो की सिद्धि के अभिप्राय से सराग देवों की उपासना करना देव मूढता कहा गया है, क्योकि प्राणियो मे सुख-दुःख या अभीष्ट कार्य सिद्धि का होना अपने पूर्वकृत कर्मो के अधीन है। यदि देवी देवताओ की उपासना ही फल दायक होती, तो कोई भी उपासक निराश होकर दुखी दिखाई नही देता।

किन्तु विवेक-शून्यता के कारण उपासक का इस ओर ध्यान नही जाता है। अतएव वह वारम्वार इस विषय मे असफल होकर भी पुन २ रागी, द्वेषी देवो की उपासना कर अपनी शक्ति और समय को वर्वाद करता रहता है।

रागी-द्वेषी देवो को छोडकर कुछ सज्जन भी वीतराग की उपासना भक्ति के स्थान पर स्वार्थ-सिद्धि की भावनाओ से करते हुए पाये जाते है, जिनमे वीतराग भगवान की भक्ति का उद्देश्य तो पूरा होता नही प्रत्युत देव मूढता का प्रसग अवश्य आ जाता है। वीतराग की उपासना वीत-रागता आत्मसात करने के उद्देश्य से ही की जानी चाहिये। वीतराग देव की की गई निष्काम उपासना मे जो सुख भावना का सहज सम्पादन होता है, उससे अनिर्दिष्ट कार्यो की सिद्धि स्वय ही होती है।

उसके लिये उससे कुछ याचना करने की आवस्यकता नही है, किन्तु उपासना मे भावो की विशुद्धि के बिना न तो पुण्य का ही सम्पादन होता है और न उपासना करने के उद्देश्य की ही पूर्ति होती है। अत परमात्मा के स्वरुप को समझकर उसके कर्तव्य का भ्रम दूर कर देना ही श्रेयस्कर है।

भगवान महावीर ने इस कर्तव्य की कल्पना का स्पष्टतया दृढता के साथ निषेध किया था।

★

भगवान महावीर ने भारतवर्ष को उस मुक्ति का सन्देश दिया जो धर्म की वास्तविकता है, केवल सामाजिक रूढी नही। मुक्ति धर्म की उस वास्तविकता के आश्रय से उपलब्ध होती है, जो निवृत्तिपरक है तथा सामाजिक प्रदर्शन व रूढियो से परे है एवं मनुष्य मनुष्य के बीच मे कोई दीवार नही मानती है।

–विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर

भगवान महावीर की अहिंसा के कुछ सूत्र

— डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री

[अधिकतर लोग अहिंसा को निषेधात्मक समझते है, किन्तु वह विधेयात्मक भी है। अहिंसा की विधायिका शक्ति मैत्री है। अहिंसा जहां सत्य-सापेक्ष है, वहीं नि.स्वार्थ सेवा, प्रेम, करुणा आदि गुणो से समन्वित है। दूसरे का महत्व स्वीकार करना और उसे अपने से कम नही समझना अहिंसा का मूल गुण है।]

भारतीय इतिहास, सस्कृति तथा जीवित परम्परा के अध्ययन से यह मत भली भाति स्पष्ट हो जाता है कि भगवान महावीर का मूल-मन्त्र "अहिसा परम धर्म" है। यह एक स्पष्ट तथा निर्णीत तथ्य है। अग-जग के सभी मूलभूत उपादानो मे उन्होने एक ही शाश्वत तथा अनादिनिधन एव अखण्ड चेतना के दर्शन किये थे। यद्यपि सभी दर्शन और मत अहिसा को धर्म मानते है, किंतु भगवान महावीर ने दर्शन, धर्म और सस्कृति के मूलभूत उपादान के रूप मे अहिसा का प्रतिपादन किया था। अहिसा का सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा गम्भीर से गम्भीर गणितीय विवेचन जैन धर्म मे किया गया है। इसे पढने से यह निश्चित हो जाता है कि अहिसा का इतना सूक्ष्म तथा गम्भीर विवेचन जो कि जीवन के प्रत्येक आचार विचार मे समाहित हो जैन धर्म के सिवाय किसी अन्य धर्म मे नही पाया जाता है।

सत्य क्या है ?

ससार के सभी धर्म सत्य होने का दावा करते है। किंतु सत्य क्या है ? इसे शब्दो मे नही कहा जा सकता। जब सत्य अवक्तव्य है, तब उस सत्य के कारण कौन धर्म सत्य है, यह निर्णय करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। भगवान महावीर के अनुसार "सच्च लोगम्मि सारभूय" सत्य लोक मे सारभूत है। किन्तु यह सत्य प्राप्त कैसे होता है ? इसे जीवन मे कैसे उतारा जा सकता है? इन सभी प्रश्नो का उत्तर देते हुए वे कहते है— अहिसा सत्य-सापेक्ष है। बिना सत्य के अहिसा की स्थिति नही है। इसलिये अहिसा के सम्यक पालन

के लिए सत्य का ध्यान होना, सत्य की ओर लक्ष्य होना आवश्यक ही नही, अनिवार्य भी है। वस्तुत परमार्थ से 'सत्य होना' अहिसा है और व्यावहारिक जीवन मे नि स्वार्थ प्रेम, करूणा, सेवा आदि अहिसा है। मैत्री अहिसा की विधायिका शक्ति है। सत्य स्वय होने की स्थिति है, इसलिए सत्य की कोई भिन्न स्थिति नही है। जो है वही सत्य है। किन्तु जो है वह किसी के आश्रित नही होना चाहिए। अपने मूल रूप मे सहज, स्वाभाविक स्थिति मे होना ही 'सत्' है। इस प्रकार वस्तु की मूल स्थिति 'सत्य' है। परन्तु अहिसा की स्थिति निरपेक्ष नही है। अहिसा की स्थिति क्या है, यह हम सत्य से जान सकते है सत्य अहिसा का अवधारक है सत्य की शक्ति से अहिसा परिचालित होती है इसलिए सत्य के बिना अहिसा की वस्तुत कोई स्थिति नही है। यह एक परमार्थ दृष्टि है। इससे अहिसा की आत्मा पहचानी जा सकती है। जब तक हमे अहिसा की आत्मा की पहचान न होगी, तब तक अहिसा का पालन करना कभी सही स्थिति मे नही हो सकेगा। इसी भाव को ध्यान मे रखकर सत्य को जगत का सारभूत कहा गया है।

अहिसा का प्रथम सूत्र—

अहिसा का प्रथम सूत्र है-मैत्री। मैत्री का अर्थ है-प्रेम की व्यापकता। मनुष्य जब स्वार्थ से ऊपर उठकर मनुष्यत्व की सामान्य स्थिति मे आ जाता है, तब उससे सह-अस्तित्व, सहानभूति तथा नि स्वार्थ प्रेम की भावना का विकास हो जाता है। अहिसक होना और सहानुभूति की भावना का उदय होना दोनो एक है। दोनो क्रियाए सापेक्ष है। दोनो मे से किसी एक के होने पर दूसरी का होना अवश्यम्भावी है नि स्वार्थ प्रेम तथा विशुद्ध भावना मनुष्य को व्यापक बनाती है। विशुद्धता मनुष्य को ईश्वरत्व की ओर ले जाती है, जबकि वह आत्मा से परमात्मा बनने के लिए ससार के भौतिक साधनो से अपनी आसक्ति हटाकर आत्म-साधना का अभ्यास करता है और नर से नारायण बनता है।

आत्मा को परमात्मा बनना ही अहिसा का उद्देश्य है। जब तक काम है, क्रोध है, मोह है, तब तक सूक्ष्म रूप से हिसा विद्यमान रहती है। ये सभी भाव उत्पन्न होने की स्थिति मे हिसा होती ही है। भाव ही हिसा का मूल है। किंतु भावो की भी दो स्थितिया मानी गई है-शुभ भाव और अशुभ भाव। अशुभ भावो से बचने के लिए शुभ भावो का आलम्बन लेना होता है। बिना शुभ भावो के कोई गति नही है। किंतु यह गति य त नही है, विराम नही है। इसमे स्थिरता नही है। इसलिए यह ससार-परिभ्रमण की जननी है। जहाँ न शुभ है, न अशुभ है वही आत्मा से परमात्मा बनने की स्थिति है।

मनुष्य को प्रत्येक स्थिति मे अभ्यास करना पडता है। यह अभ्यास शब्द का, अर्थ का, भाव का और भावो से परे मन का और मन से भी परे आतम चर्या का होता है। अपने समस्त साधनो को शुद्ध किए बिना हम अभ्यास मे सफल नही हो पाते। इसलिए प्रथम शुद्धि को धर्म माना गया है।

द्वितीय सूत्र साध्य के साथ साधन की भी शुद्धि—

भ महावीर की अहिसा मे हमे यह विलक्षणता लक्षित होती है कि वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे, प्रत्येक कार्य मे, प्रत्येक व्यवहार मे और प्रत्येक पद्धति मे शुद्धता को आवश्यक मानते है। यह शुद्धता केवल वस्तु मे ही नही, विचारो मे भी और आचार मे भी आवश्यक मानी जाती है। यही कारण है कि जैन लोग भक्ष्य (खाने योग्य) और अभक्ष्य (नही खाने योग्य) का अपने खान-पान मे बहुत विचार रखते है लहसुन-प्याज व अडा आदि को छूते तक नही है। ये किस कारण से सेवन करने योग्य नही है, इस बात का बहुत विस्तार से विवेचन किया गया है। सभी वनस्पतिया खाने योग्य नही है। बिना जानेकिसी भी वनस्पति का सेवन करना हानिकारक है। कई वनस्पतियो के सेवन से तो मृत्यु तक हो जाती है। कुल वनस्पतियो की सख्या दस लाख बताई गई है। इनमे से किन वनस्पतियो का सेवन करना चाहिए और किनका भक्षण नही करना

चाहिए, इसका विचार मनुष्य ही कर सकता है।

पशु-पक्षी से मनुष्य मे पहली विशेषता तथा विलक्षणता यही मिलती है कि मानव एक विवेकशील प्राणी है। मनुष्य की विवेकशीलता का परिचय हमे उसकी हेय-उपादेय बुद्धि मे लक्षित होता है। क्या ग्रहण करने योग्य है, क्या शरीर, मन और बुद्धि के लिए ग्रहण करने योग्य नही है, क्या खाने योग्य है, क्या पहनने योग्य है, क्या बोलने-लिखने और व्यवहार करने योग्य है–यह बुद्धि-विवेक ही मनुष्य को एक औसत आदमी बनाता है। मनुष्य पहले एक औसत आदमी है, जाति, वर्ण, देश और धर्म सब बाद की बाते है। मानवता की बात करने वालो को प्रथम एक औसत आदमी बनने की दिशा मे सक्रिय होना चाहिए।

एक औसत आदमी बनने के लिए मनुष्य जो बनना चाहता है, अहिसक होने के लिए पहले अहिसा मे रुचि और विश्वास होना आवश्यक है। विश्वास का अर्थ अन्धविश्वास नही है, वरन् यह समझ और निर्णय है कि अहिसा जीवन के लिए क्यो उपयोगी है। अहिसा केवल आदर्श नही है। यदि अहिसा कोरा आदर्श होता तो करोडो वर्षो के बाद भी आज तक ससार मे नही टिकती। किन्तु इतिहास यह बताता है कि अहिसा के मूल्यो को मनुष्य सदा कसता रहा है। जीवन मे अहिसा के प्रतिमानो मे सदा गरिमा और भव्यता रही है। यदि भारतीय अपने जीवन के लिए अहिसा को उपयोगी नही समझते, तो अहिसा को जीवन मे स्थान क्यो देते ? सिद्धात ग्रन्थो के लिए नही बनते, वे तो मनुष्य जीवन की शाश्वत निधि होते है। मनुष्य के जीवन से जो छन कर आता है, जिसमे ज्ञानी जनो का अनुभव तथा जीवन-सार निहित होता है, वे ही सिद्धात की सज्ञा प्राप्त करते है। सिद्धात शाश्वत होते है। सिद्धात के अनुसार ससार का प्रत्येक जीव, प्राणी मात्र चेतन है। चेतन की रक्षा करना अर्थात् अपनी रक्षा करना है। एक छोटी-सी चीटी से लेकर विशालकाय हाथी तक मे समान चेतना व्याप्त है सभी चेतनावान दुख से घबराते है और सुख चाहते है इसलिए सब के साथ वही व्यवहार करना चाहिए जो हम अपने लिए उचित समझते है या दूसरे से हम अपेक्षा रखते है। इससे यह भी प्रतिफलित होता है कि हम केवल अपना ही ख्याल न रखे, किन्तु अपने व्यावहारिक जीवन मे दूसरो का भी ख्याल रखे। हम केवल यही समझते है कि दूसरे को मारना, सताना ही हिसा है, किन्तु अन्याय, शोषण, अत्याचार बल प्रयोग, तस्करी, कानून व नियमो का स्वार्थवश उल्लघन, बेईमानी, द्वन्द, तनाव और सघर्षण के लिए आगे आना लोगो को प्रोत्साहित व उत्तेजित करना और तोड-फोड कराना आदि सभी हिसा के अन्तर्गत आते है।

आज एक राज्य दूसरे राज्य को आर्थिक व राजनायिक सहायता देकर उसे दबाये रखना चाहता है, यह भी एक प्रकार की हिसा है। आज ससार मे कहा शोषण नही है ? शोषण के रूप अलग-अलग है। जहा भी व्यापार चलता है, वहा किसी न किसी रूप मे शोषण अवश्य होता है। कही मजदूरो का शोषण है, तो कही लेखको का शोषण है और कही समाज तथा राष्ट्र का शोषण है। एल

पीजेक्स ने उचित ही कहा है , आज ससार सम्पत्ति को सामाजिक, बनाना चाहता है, राष्ट्रीयकरण चाहता है, लेकिन मनुष्य के स्वभाव को सामाजिक बनाने की बात उसे नही सूझती। स्वभाव का सामाजीकरण आत्म नियन्त्रण से हो सकता है। भ. महावीर ने इसे 'आत्मानुशासन' कहा है। अपने को अनुशासित करने वाला व्यक्ति 'जिन' कहा जाता है। जिन पाचो इन्द्रियो और मन को अपने वश मे रखता है। जिन के उपासक को जैन कहते है। जैन अहिसक और अपरिग्रही होता है। यदि ससार के सभी लोग अहिसक और अपरिग्रही बन जाएँ, तो वहा की राज्य-सरकार को कानून बनाने की सम्भवत आवश्यकता ही न पडे। महात्मा गाधी का कथन उचित ही है कि अहिसा मनुष्य जाति का कानून है और वह पशुबल से अनन्त गुनी अधिक शक्तिशाली और श्रेष्ठ है। अहिसा कायरता को छिपाने की आड नही है, बल्कि वह वीरो का सबसे

वडा गुण है। अहिसा के पालन मे तलवार चलाने से कही अधिक वीरता की जरूरत है । कायरता और अहिसा का कोई मेल ही नही है।

जीवन एक वाजार की भीड है। इसमे तनाव है, द्वन्द है, प्रदर्शन, अत्याचार और शोषण है। प्रत्येक मनुष्य इस वाजार मे आकर प्रदर्शन का मालिक वनना चाहता है। मालिक बनने के लिए छल-बल का प्रयोग करता है। छल-बल से कुछ पा जाता है तो उसे अपना समझता है। भ महावीर कहते है कि अज्ञानी जीव ! ससार मे सुख-दु ख, भय, इच्छा आदि है तो इन कार्यो का कारण भी है। बिना कारण के कोई कार्य नही होता। मनुष्य इस जन्म मे जो कुछ भी प्राप्त करता है, वह पूर्व जन्म के किए हुए अच्छे-बुरे कर्मो का फल होता है। कर्म के अनुसार ही मनुष्य की बुद्धि होती है। इसलिए जो यह मानता है कि मैंने धोखा देकर या बेईमानी से यह कमाया है, वास्तव मे बेईमानी की कमाई न होकर पूर्व जन्म के पुण्य का फल है। यदि वह इस उपाय से या इस तरीके से फल प्राप्त नही होता, तो किसी अच्छे तरीके से भी प्राप्त अवश्य होता। क्योकि किसी भी निमित्त या साधन अथवा तरीके से इतना लाभ होना अवश्यम्भावी था। इस प्रकार मनुष्य अपने पुरुषार्थ के माध्यम को बदलता रहता है, वास्तव मे तो वह अपने भावो को ही करने वाला है। उसके मन के भावो को कोई दूसरा आकर नही कर जाता। वे सभी को सहायक हो जाते है। अत-एव भ महावीर का यही कथन है कि हम अपने भावो को प्रत्येक समय करने के लिए स्वतत्र है, उन पर किसी का नियत्रण नही हो सकता। भाव भी हम अच्छे ओर बुरे दोनो तरह के कर सकते है। यदि हम वास्तव मे मनुष्य बनना चाहते है, तो हमे प्रत्येक समय मे अच्छे भाव तथा विचार करने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। बुरे भावो को रोकना होगा, तभी अच्छे भाव उत्पन्न हो सकते है। भावो को शुद्ध वना कर ही मनुष्य सयम के द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध वना सकता है। आत्म शुद्धि का नाम ही धर्म है।

★

प्रश्न यह है कि मै कौन हूं ? क्या हूँ मै ? किन कारणो मे मेरा अस्तित्व है ? सभी प्रश्नो का अकाट्य रीति से उत्तर किया गया है। मै एक जैन हूं क्योकि जैन धर्म सुखी जीवन की समस्या का स्थायी समाधान प्रस्तुत करता है। यह मुझे पूर्ण आरोग्य तथा मन को शाति प्रदान करता है पश्चिम मे जो भी विस-गतियाँ प्रकट होती दिखलाई पडती है उन सबका दार्शनिक तथा वैज्ञानिक उत्तर यहाँ पर है इसलिए मैने जैन धर्म गहण किया है। (लुइस डी. सेन्टर)

आध्यात्मिक ऊर्जा के स्रोत

भगवान महावीर

—रत्नेश 'कुसुमाकर'

भगवान महावीर को एक विचार, एक क्रात दृष्टि और एक आध्यात्मिक उर्जा के रूप मे ग्रहण करना मुझे शुरू से ही रुचा है, अच्छा लगा है। विचार को जीवन मे उतारा जा सकता है, क्रात दृष्टि यदि है तो युगो के अधकार को विदीर्ण करना कठिन नही होता और आध्यात्मिक उर्जा से विश्व के नव रूपान्तरण को सहज और व्यावहारिक बनाना असभव नही है। भगवान महावीर मे मैं इन तीनो महद् शक्तियो को अक्षय निधि के रूप मे पाता हूं। इसलिए वे आज की भटकती हुई दुनिया के लिए एक अनिवार्य प्राण-वायु के रूप मे जरूरी हो गए हैं।

आज दुनिया की हालत उस मरीज जैसी हो गई है, जिसे मेडिकल विज्ञान की तमाम शाखाओ ने मौत के कगार से वापस खीच लेने मे अपनी असमर्थता बता दी है। बीसवी सदी मे दो-दो विश्वयुद्धों ने मानवता को बुरी तरह झुलसा दिया है। विज्ञान के खतरनाक अविष्कारो के रूप मे अणु और उद्जन बमो के जखीरो और प्रक्षेपास्त्रो ने तीसरे महायुद्ध के लिए जमीन बुहारना शुरू कर दिया हैं। चाहे मध्य पूर्व का सघर्ष हो, या वियतनाम की लडाई, ये ऐसे सिग्नल है, जो मानवता को कभी भी रक्त स्नान के लिए विवश कर सकते है। दूसरी ओर 'राजनीति का दोगला चरित्र शनै नैतिक मूल्यो को नीलामी पर चढा रहा है। भोगवाद की आँधी ने उन सभी तम्बुओ को उखाड फेका है, जिसमे कल तक मानवीय मूल्यो ने पनाह ली थी। अब हम सब दिशाहरा है। और भ्रम एव भटकाव की काली ताकते हमारे शाति–

[विश्व में रूपान्तरण की मूल क्रिया अध्यात्म से आरम्भ होती है। चेतना का विकास क्रान्त-दृष्टि से होता है। भगवान महावीर आध्यात्मिक ऊर्जा के मूल स्रोत थे। आज की सिसकती हुई तथा म्रियमाण मानवता के लिए वे प्राण वायु (ऑक्सीजन) के समान है।]

धामो के दरवाजो पर दस्तक दे रही है। ऐसी स्थिति मे भारत को अपनी सनातन-यात्रा के दौरान सिहाव-लोकन आवश्यक हो गया है। सिह दो कदम चलने के वाद तीसरा कदम उठाने के पूर्व पीछे मुड-कर देखता है। उसे हमेशा इस बात का अहसास रहता है कि वह आगे कदम बढाने के वक्त किसी शिकारी की गोली से आहत न हो जाए। इसलिए सावधानी के रूप मे वह पीछे मुडकर देखना कभी नही भूलता। ठीक यही स्थिति आज देश और दुनिया के सामने है। पीछे मुडने और देखने पर तीर्थंकर महाप्रभु महावीर का विशाल और भव्य व्यक्तित्व हमारी आँखो के आगे एक चकाचौध पैदा कर देता है।

दुनिया ने अपने भौतिक चरम विकास के लिए पश्चिम का नेतृत्व स्वीकार किया और हमने देखा कि उसने विज्ञान और तकनालॉजी के माध्यम से भौतिक विकास के उच्चतम शिखरो पर मनुष्य को पहुचा भी दिया। यहाँ तक कि चन्द्रलोक तक इसान पहुँच गया। लेकिन इसके बाद भी इसान मन, मस्तिष्क और आत्मा की प्रगाढ शाति से वचित है। वह मानसिक उत्तेजना का शिकार है और आत्म-हता वनने को विवश है। जहाँ तक हिदुस्तान का सम्बन्ध है, स्वतत्रता के इन अट्ठाईस वर्षो के बाद भी यहा का आम आदमी अभाव और अभियोगी की गर्म भट्टी मे चने जेसा भुना जा रहा है। अन्न ब्रह्म के लवे हाथ उसे अभी भी स्पर्श नही कर पा रहे है। वह भूखा है, नगा है, बेघरबार है, अशिक्षा, गरीबी और काहिली ने उसके समग्र सस्कारो को पौछ डाला है। भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, काला बाजारी, मुना-फाखोरी, भाई-भतीजावाद, तस्करी, काला धन, बुर्जुआ, प्रतिक्रियावादी, फासिस्ट, दक्षिणपथी, वाम-पथी, चमचावाद आदि सैकडो नये शब्दो की पैदा-ईश ने हमारे राष्ट्रीय चरित्र के भविष्य को उद्घा-टित कर दिया है। ऐसे सक्रमण काल मे भगवान महावीर को इस धरती पर सही मायने मे उतरना कैसे सभव है, इस पहलू पर हमे सम्यक् विचार करने की आवश्यकता है।

यह निश्चित है कि महावीर को व्यक्ति, समाज देश और दुनिया के जीवन मे उतारने का कार्य राजनीति के चौगान मे फुटवाल खेलने वालो के वश का नही है। अफसोस तो इस बात का है कि महावीर को जन-जन के हृदय मे प्रतिष्ठित करने की शपथ ऐसे ही लोग ले रहे है जो सत्ता-तत्र से जुडे हुए है जो राजनीति की शतरज खेलनेमे माहिर हैं, जिन्होने न कभी भूख की ज्वाला को वर्दाश्त किया है और न अभावो के सपाट मैदान मे कभी कदम रखा, जो मानवीय सवेदन से शून्य है और जिनकी कथनी-करनी के वीच अतलान्त महासागर लहरा रहा है, ऐसे लोग जब अहिसा, करूणा, मैत्री समता और प्रेम के राग अलापते है तो सचमुच हमारा सिर शर्म और शोक से झुक जाता है।

आज हालत यह है कि हम बाहरी खतरो से बचाव के लिए सुदृढ किलेबदी जमा कर रहे है, लेकिन हम अपने आतरिक षडरिपुओ—काम, क्रोध, लोभ मोह, ईर्ष्या, और मत्सा के विरुद्ध जितनी लापरवाही और असावधानी बरत रहे है, वह हमारी जिन्दगियो के जलपोतो को कभी भी ध्वस्त कर देने के लिए पर्याप्त है। अत प्रथमत हमे भग-वान महावीर को स्वय अपने हृदय की भावभूमि मे प्रतिष्ठित करना होगा। तभी हम दूसरो से कुछ अपेक्षा करने के अधिकारी हो सकेंगे।

भगवान महावीर ने नर को नारायण की सभावनाओ को न केवल साकार किया वल्कि आम आदमी को भी उसका व्यवहार-दर्शन दिया। उसका उपयोग यदि हम नही कर पाते है तो इसक दोषी वे क्यो होगे।

महावीर ने मन की शुचिता और उस पर विजय प्राप्त करने पर जो वल दिया है, उसके महत्व को हमे गभीरता से समझना होगा। तीर्थंकर प्रभु ने कहा है —

(शेष पृष्ठ ४१ पर)

मुक्ति विधायक भगवान महावीर

श्रीमती आशा जैन, बी ए

[भगवान महावीर मुक्ति के विधायक थे । उन्होने जिस अमावस के सघन तिमिर–अन्धकार को निर्वाण-ज्योति से आलोकित किया, वह आज तक "दीपमालिक महोत्सव" दीपावली के रूप मे प्रचलित है ।]

कार्तिक कृष्ण अमावस्या की दीपावली इस देश मे एक प्रतीक महोत्सव के रूप मे मनाई जाती है। दीपो की पक्तियाँ सजा कर प्रत्येक घर को प्रकाश से भर दिया जाता है यह प्रकाश क्या है ? अन्धकार पर प्रकाश की विजय, मर्त्य ससार मे अमर्त्य वीरत्व की उपलब्धि है । भगवान महावीर ने मोह तिमिर का सर्वथा विनाश कर अक्षय अनन्त निर्वाण-अलोक को प्राप्त किया था । दीपक ज्ञान का प्रतीक है । कैसा दीपक ? मिट्टी का दीपक, जो कि अस्थिर है, नाशवान है । इसी तरह से इस नाशवान शरीर के भीतर जो ज्ञान का अनत आलोक अर्तहित है उसे ही स्थिर निष्कम्प ज्ञान शिखा की भाति सदा प्रकाशमान रहने वाली परम ज्योति को उपलब्ध होना ही निर्वाण पद की प्राप्ति है । भगवान महावीर को अमावस्या के अन्धकार से भरे विपय-भोगो के ससार मे निर्वाण की उपलब्धि हुई थी, जो विपय विकारो पर महान विजय की ससूचक है ।

ईस्वी पूर्व ५२७ मे राजगृह के निकट पावा मे भगवान महावीर को निर्वाण हुआ था । उनके निर्वाण होते ही देव-इन्द्रो के साथ ही १८ मल्ल–लिच्छवि राजाओ ने दीपोत्सव का महान पर्व मनाया था । उसी दिन दीपो को माला रूप मे सजा कर प्रज्वलित किया गया और निर्वाण के प्रतीक रूप मे

दीपोंको अलकृत किया गया। निर्वाण का प्रतीक शून्य है और ज्ञान का प्रतीक दीपक है। माला के आकार मे दीपो को सजाने से एक वृत्त (गोल) वन जाता है जो शून्य होता है। इस प्रकार "दीप-मालिका" का महोत्सव अपने नाम के अनुसार गुण को चरितार्थ करता है। दीपावली मनाने का यह एक वैज्ञानिक कारण है। निस्सन्देह भगवान महावीर के निर्वाण से इसका पूरा-पूरा सम्बन्ध है।

भगवान महावीर मुक्ति विधायक थे। उन्होने स्वय अपना कल्याण किया था और दुनिया को कल्याण का मार्ग दिखाया था। कल्याण का अर्थ है सुख। सारा ससार सुख चाहता है। किंतु सुख बाहरी नही है, भीतरी है। भीतरी सुख को भीतर मे ही जाकर खोजा जा सकता है। बाहरी सुख-साधन क्षणिक उपाय है। यदि इन उपायो से सुख मिल सकता, तो कभी का मिल गया होता। भगवान महावीर को बाहरी सुख-साधनो की कमी नही थी। इसलिए एक निस्पृह योगी की भाति उन्होने राज्य को नही अपनाया, विवाह नही किया और घर मे नही रहे। क्या यह सब बन्धन थे ? नही, उन्हे मुक्ति की साधना करनी थी। मुक्ति की साधना घर मे रह कर नही हो सकती थी।

भगवान महावीर की मुक्ति केवल अपने लिए नही थी, सबकी मुक्ति सबके लिए। सबकी मुक्ति अलग-अलग है, मुक्ति के मार्ग भी अलग-अलग है किंतु विधान एक है। दर्शन (भक्ति) ज्ञान (स्व सवेद्य आत्मानुभूति) और चारित्र (आत्मा मे तन्मयता) तीनो के पूर्ण समन्वय से मुक्ति मिलती है।

ससार मे अधिकतर दो तरह के पथ होते है भक्ति मार्ग और ज्ञान मार्ग। ये दोनो एक दूसरे से उल्टे दिखलाई पडते है। भक्ति मार्ग मे भगवान की भक्ति पूजा, उपासना, वन्दना आदि की प्रधानता होती है और ज्ञान मार्ग मे योग साधना या आत्म ध्यान की मुख्यता होती है। मुख्यता का यह मतलब नहीं है कि उसमे अन्य बातो पर ध्यान नही दिया जाता है अथवा पालन नही किया जाता है। परन्तु किन्ही खास बातो पर जोर देने के कारण अन्य बाते गौण हो जाती है और किसी एक मत का आग्रह बन जाता है। भगवान महावीर ऐसे आग्रही नही थे। उनके सम्पूर्ण जीवन मे एक अनाग्रही का व्यक्तित्व दिखलाई पडता है इसलिए उन्होने 'पर' की सत्ता को अस्वीकार नही किया, किंतु 'स्व' को उपादेय बतलाया। अपने राग, द्वेष विकारो से मुक्ति पाने के लिए उन्होने अन्तर्द्वन्द किया, तपस्या की और आत्म-साधना के द्वारा निर्वाण की प्राप्ति की। परन्तु सामाजिक शोषण अत्याचार, हिसा द्वेष की अग्नि मे झुलसते हुए प्राणियो को भी उन्होने बुराईयो से मुक्ति दिलाई। यही कारण है कि उन्हे तीर्थंकर माना जाता है, जबकि उन जैसे अनन्त भगवान हो चुके है। उन अनन्त भगवानो ने ने अपना कल्याण किया था, पर दूसरो का नही किया था, इसलिए वे 'जिन' थे, पर तीर्थंकर नही।

बचपन मे ही उन्होने अपने साथियो की रक्षा की थी, जिससे महावीर कहलाये। वीर और अतिवीर भी इसीलिए कहे गये। किन्तु महावीर के व्यक्तित्व के ये चमत्कार ही यदि सब कुछ होते और जनता उनसे मुग्ध होकर उन्हे भगवान मानकर सुखी हो जाती तो तीस वर्ष के राजकुमार को महल छोड कर साधना के लिये क्यो प्रस्थान करना पडता ? राजवश के साधनो का उपयोग करके उन्हे वैशाली मे रहते हुये समाज कल्याण का काम रुचिकर नही लगा। उन्होने अनेक उपसर्ग सहे, कठिन से कठिन सर्दी गर्मी सहन करते हुए बारह वर्ष का कठिन साधना-काल व्यतीत कर केवल ज्ञान को प्राप्त किया। जब उनकी साधना सार्थक और सफल हुई तब भगवान महावीर जन-जन मे अपना धर्मोपदेश देने लगे। भगवान महावीर की धर्मसभा (समवशरण) मे सभी प्राणी इकट्ठे होकर उपदेश सुनते।

उन्होने इस सामाजिक क्राति का शखनाद किया, जिसका मुख्य लक्ष्य धर्म तीर्थ था। धर्म

जिसने भारतीय समाज व्यवस्था को सदा प्रभावित किया, समाज को सुमार्ग दिखाया, मन को शाति दी, विश्व बधुत्व के द्वार खोले एव सहिष्णुता की सीख दी तथा सत्य, अहिसा, एव अपरिग्रह का महान पाठ पढाया।

महावीर की यात्रा विचार से आरम्भ होने के कारण वे एक ऐसे दर्शन को उपलब्ध करा सके, जिसमे न कोई अन्तर आया और न कभी पुराना पडा। उनके विचार २५०० वर्ष बाद भी आधुनिक लगते है और वर्तमान परिस्थितियो के समाधान मे तो अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

आध्यात्मिक उर्जा के स्रोत भगवान महावीर

(शेप पृष्ठ ३८ का)

"जो सहस्स सहस्साण सग्रामे दुज्जए जिए।
एग जिणेज्ज अप्पण एस्से परमो जओ॥"

दुर्जय सग्राम मे सहस्त्र-सहस्त्र शत्रुओ की जीतने की अपेक्षा एक अपनी आत्मा को, मन को जीतना ही सर्वोत्कृष्ट जय है। जो अपनी आत्मा को जीत लेता है, वही सच्चा सग्राम-जयी है।

आज जबकि आत्मा और मनस् तत्व की तलाश मे पूर्व और पश्चिम की सुगबुगाहट उभर रही है, परम कारुणिक तीर्थकर प्रभु की करुणा को इस झुलसी हुई मानवता पर जब तक नही बरसाया जाता, बत तक सृष्टि का रूपान्तरण सभव नही है।

सत्य ही तप है, सत्य मे ही सयम और शेष सभी गुण समाहित है। जैसे समुद्र मछलियो का आश्रय-स्थल है, वैसे ही सत्य सभी गुणो का आश्रय-स्थल है। (वीर वाणी)

जैनों का अर्थ है—सयम और अहिसा। जहा अहिंसा है वहाँ भाव नही रह सकता है। दुनिया को पाठ पढ़ाने की जवाबदारी आज नही तो कल अहिंसात्मक सस्कृति के ठेकेदार बनने वाले जैनियो को ही लेनी पड़ेगी।

(सरदार वल्लभभाई पटेल)

जय जय वर्द्धमान सन्मति

रचयिता—रमेशचन्द्र जैन 'योगेन्द्र' इन्दौर

भूतल पर अनाचार फैला,
मनुजो पर आरे चलते थे।
शोषित पीडित जनता सारी,
जब व्याकुल प्राणी सारे थे ॥१॥

सित चैत्र शुक्ल तेरस के दिन,
उन महावीर का जन्म हुआ।
जो तीन-लोक के हीरे थे,
भू-मण्डल पर आलोक हुआ ॥२॥

वे जन्म-जात योगी, सन्मति,
ज्ञानी एव बलवान बडे।
ले शस्त्र अहिसा का तब ही,
क्रतु-कुण्ड हवन मे कूद पडे ॥३॥

लेकर समाधि जाकर वन मे,
तप बारह वर्ष कठोर किया।
करके विशुद्ध अतर आतम,
तव केवल ज्ञान विशाल लिया ॥४॥

ग्राम - ग्राम देशाटन कर,
उपदेशामृत सबको पिला दिया।
अपनी ही शक्ति के द्वारा,
हिसा का पाया हिला दिया ॥५॥

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को,
पावापुर मे निर्वाण हुआ।
हमने क्या ? देवो ने मिलकर,
दीपोत्सव आरम्भ किया ॥६॥

'जिओ और जीने दो' का सन्देश,
हम जन-जन तक पहुँचायेगे।
महावीर निर्वाण हेतु ही,
सव दीपावली मनायेगे ॥७॥

उनके आदर्श उपस्थित है,
दुनिया मे उनको याद करो।
सुख शाति निराकुलता पाने,
श्री सन्मति का जयनाद करो ॥८

★

महावीर की विरासत

—माणकचन्द कटारिया

[महावीर की अनुभूति बाहरी नहीं, आध्यात्मिक थी। वे बाहर से अपने आप में लौट आए थे। किन्तु हमारा लगाव बाहर से इतना अधिक है कि हम बाहरी सम्बन्धों से चारों ओर से घिरे हुए है। उनसे विमुख होने पर आत्म ध्यान हो सकता है।]

समुद्र-भर विरासत मे से हमने कुछ सीपियाँ उठा ली है और मान बैठे है कि हम महावीर के है और उसके द्वारा विराट विरासत के मालिक है। इससे बडी और कोई भ्राति नही हो सकती। वह एक अद्भुत, अपने आप मे सहज, निपट अपरिग्रही आत्मदर्शी था। कौन-सी विरासत दे जाता? न उसने पन्थ बनाया, न सम्प्रदाय; न उसने ग्रन्थ रचे न परम्पराए बनाई। न कोई उसका मठ, न विहार, न सघ। उसने बस जीवन जीया, अन्दर का सारा कूडा बाहर फेका और भीतर के इस स्वच्छ रिक्त स्थान मे सारी सृष्टि को आत्मसात् कर गया। यह जो बाहर से भीतर उतरने और भीतर ही भीतर आत्म-तत्व को देखने-परखने उसकी शक्तियो का अन्दाज लगाने, आत्म-तत्व को तोडने वाले विकारो से जूझने और उनसे मुक्ति पाने की प्रक्रिया मे वह डूबा रहा, निखर-निखर कर ऊपर आता गया और अन्त मे अपनी इन गहरी अनुभूतियो को बिना किसी भाषा और ग्रन्थ के सहारे अभिव्यक्त करता गया, यही उसकी विराट् विरासत है। एकदम करनी की विरासत, जो न भजने से हाथ लगेगी, न पूजने से। बोलने की तो बात है ही नही, जो कुछ है करने की है। अपने-आप मे सहज होकर जीने की है।

महावीर अपने आप से जीतता गया, इसलिए 'जिन' कहलाया। पर हम सेत-मेत मे ही 'जैन' हो गये। जन्मते ही हमारे हाथ ऐसी विरासत लग गयी, जिसे जीये तो 'जिन' हो सकते है, पर हम ऐसा कुछ नही कर रहे। वह बाहर का फेक कर भीतर गया और हम उसका नाम लेकर बाहर-बाहर तैर रहे है। भीतर तो हमारे पैर रखने की जगह

नही है। उसकी विराट् विरासत बाहर टटोल रहे है। सदियो चल कर हमने एक विशाल इस्टेट-जायदाद महावीर की बना ली है जिनवाणियो की सुन्दर जिल्दे हमारे पास है, एक-से-एक आलादर्जा वीतरागी मूर्तियाँ भगवान महावीर की हमारे मन्दिरो मे विराजमान है, चमकते-दमकके कलश है, तीर्थ स्थान है, लाखो की सख्या मे हम खुद है, हमारी एक परम्परा है—भक्ति की, साधना की, व्रत-उपवास की, श्रवण की, दया और त्याग की। श्रावक परम्परा है और साधु परम्परा है। अहिसा हमारा लक्ष्य है। पर यह सब बाहर-बाहर है, भीतर गया ही नही। महावीर भीतर के और हम बाहर के। महावीर करनी के और हम कथनी के। महावीर निर्लिप्त और हम लगे है पकडने मे। ऐसे मे महावीर की विरासत हमारे पल्ले पडी क्या ? इस प्रश्न का उत्तर जरूर खोजिये, महावीर निर्वाण की पच्चीसवी शताब्दी का यह वर्ष शायद सफल हो जाये।

महावीर की पहली अनुभूति तो यह है कि जीवन बाहर नही, भीतर है। इसलिए लौटो बाहर से छूटो और भीतर आओ। अपने आत्म-तत्त्व को खोजो। उन्होने एक अद्भुत प्रक्रिया की खोज की—'सामायिक'। समय याने आत्मा और सामायिक याने आत्मा मे होना। यह 'ध्यान' से एकदम अलग शब्द है। ध्यान से कोई जुडा है। मै ध्यान करता तो मेरे ध्यान मे कोई और है। पर अपनी ही आत्मा मे लीन होने की प्रक्रिया है 'सामायिक'—यह महावीर की खोज है। लेकिन शर्त यह है कि आप प्रतिक्रमण' करे। बाहर के सम्बन्धो से छूट कर अपने भीतर लौटे। अब उल्टा हो रहा है। मनुष्य बाहर से तो छूटता नही, 'सामायिक' करने लगता है, इसलिए केवल ध्यान तक पहुँचता है। ध्यान किसका करेगा, वहाँ भी तो बाहर का ससार बैठा है। और यो वह अपने ही भीतर नही जा पाता, क्योकि वहाँ जगह नही है। ससार के सारे प्रतिमानो (परछाईयो) से आत्मा घिरी है। नतीजा यह है कि मन्दिर मे जाकर, ध्यान पर बैठ कर, माला फेर कर, पूजा पाठ मे लग कर भी मनुष्य अपने आत्म-तत्त्व से दूर है।

महावीर कहते है कि आत्मबोध के बिना दृष्टि नही आयेगी। दर्शन पहली सीढी है, ज्ञान और चरित्र इसके बाद की सीढियाँ है, परन्तु श्रावको का और साधुओ का भी सारा जोर चरित्र पर चला गया है चरित्र के कुछ फारमूले बन गये है। ऐसा-ऐसा करोगे तो श्रावक रहोगे। ऐसा-ऐसा करोगे तो साधु माने जाओगे। हमारी अहिसा ने रसोईघर सम्हाल लिया है और करुणा ने दया का रूप ले लिया है हमारे बहुत से 'डू नॉट्स' (निषेध) है—यह मत करो, यह मत खाओ आदि, आदि। हमे खूब दया आ रही है—वनस्पति से लेकर प्राणियो तक हमारी जीव-दया चल रही है। पर महावीर रसोईघर की अहिसा की बात कर ही नही रहे—वे उस अहिसा की बात कर रहे जो आत्मदर्शी है, जो सारी सृष्टि मे आत्म-तत्त्व देखती है। वे उस करुणा की बात कर रहे, जो पूरी सृष्टि से जुडी है। आप दुखी है इसलिए दया करूँगा, आप गरीब है इसलिए मेरी दया उपजेगी, आपको चाहिए तो मै दूगा—यह महावीर की करुणा नही है। महावीर की करुणा मनुष्य के जीवन की एक चेतना है। आत्मबोध के बाद मै कुछ कर सकता हूँ, तो करुणा ही कर सकता हू, कुछ जी सकता हूँ तो अहिसा ही जी सकता हूँ। यह दृष्टि तो हमने पकडी नही, महज खाने-पाने और दान-धर्म की मर्यादाओ मे उलझ गगे है।

महावीर का धर्म टोटेलिटी—समग्रता का धर्म है। खण्डित कुछ नही चलेगा। मन्दिर का धर्म अलग और व्यापार-व्यवसाय का अलग ऐसा विभाजन हो ही नही सकता। आप जो सुबह है वही शाम है, आप जो धर्म-जगत् मे है वही कर्म जगत् मे है। 'विवेक और जागरण' की मशाल उन्होने मनुष्य के हाथ मे सारे समय के लिए थमा दी। जो कुछ करो,

विवेक से करो। मुर्च्छा छोड़कर करो, प्रमाद से बाहर निकल कर करो। पर हमने महावीर की मूर्ति तो अखण्डित रखी और अपने आपको जगह-जगह से तोड लिया है। एक ही मनुष्य के कई बौने मनुष्य बना लिए है। मन्दिर का मनुष्य एकदम अलग है; बाजार के मनुष्य से। बाजार मे उसने झूठ चोरी, तृष्णा, द्वेष, ईर्ष्या, सग्रह, लूट, शोषण—सब कुछ कर्म-जगत् का कौशल मान कर स्वीकार किया है और वही वीतरागी महावीर के पास पहुँचकर कहता है मुझे इनसे वचना है। महावीर अविभाज्य व्यक्तित्व चाहते है और हम बिखर-बिखर कर चल रहे है। महावीर के पास कोई देवालय नही था कि वहाँ जाकर वह धर्म साधता; वह तो आत्म-धर्म का प्रकाश लेकर पूरे जीवन मे चल पडा। यह उसकी एक क्रातिकारी देन है जो हमने ली ही नही।

इसी तरह अहिसा की पीठ पर महावीर ने लिख दिया 'अपरिग्रह'। बहुत गहरे गये वे इस दिशा मे। यह वस्तुओ के भोग या त्याग की वात नही है, उनसे अलिप्त होने का अभ्यास है। सन्यासी ने घर छोडा और छोडने का अहकार मन मे रह गया, तो उसका छोडा और न छोडा सब अकारथ। वे पूरे जीवन अलिप्त होने का अभ्यास करते रहे। पर इस साधना मे हम पडे ही नही। हम तो खूब-खूब पकड रहे और फिर कुछ-कुछ छोड रहे है। महावीर कहते है न पकडो, न छोडो — महज बनो। बे – लगाव होने का अभ्यास करो। पर हम जोडने मे लगे है, जहाँ से जितना मिले पाने मे लगे है। इस मामले मे मनुष्य बुरी तरह हार गया है जिसने नही जोडा वह इसी चिता मे पडा है कि कब पुण्य का उदय हो और वह पा ले। इस ऊहापोह मे वर्तमान उसके हाथ से खिसक रहा है और वह भविष्य मे जीने की कोशिश कर रहा है महावीर भविष्य के है ही नही, वे पूर्णतया वर्तमान के है। उनकी अहिसा की आधार-शिला है—अपरिग्रह अर्थात् अलिप्त होने का अभ्यास। मैने बटोरा और छोड़ा यह एक ही क्रिया है। अभ्यास इस बात का करना होगा कि वस्तुओं इस समुद्र मे उनसे विना चिपके के जीयें।

महावीर ने एक और महत्व की चीज खोजी—'स्यात्'। स्यात् यह भी, स्यात् वह भी। अभी हमारा इस तत्त्व पर बहुत ध्यान नही गया है। विज्ञान ने खोज निकाला है। सत्य के अन्वेषी को पूर्ण सत्य तक जाने मे यह तत्व बहुत सहायक है। हम जो देख रहे है, समझ रहे है उसमे बहुत मर्यादाएँ है। आग्रह पूर्वक अपना ही दृष्टिकोण थोपे इससे बात नही बनेगी। हमारे दुराग्रह पर और एकांगी दृष्टि-कोण पर अकुश की जरूरत है। ज्ञान के दरवाजे खुले रखने मे स्यात् ने बडी मदद की है। यह तत्व महावीर के अनुयायियो की कोई सहायता नही कर सका, अलग अलग मत-मतान्तरो के कठघरे मे उनका महावीर कैद है। वह स्यात् के माध्यम से मुक्ति के द्वार खोलने चला था, भक्तो ने उसे ही बन्द कर दिया।

उसकी अनुभूति का एक और रत्न। मनुष्य को मुक्ति प्रभु कृपा से मिलेगी या उसके स्वय पुरुषार्थ से ? वह भक्ति मे पडे या अपने आत्म शोधन मे। मनुष्य प्रभु के निहोरे खाता ही रहा है। उसकी इनायत की भीख माँगता ही रहा है। महावीर का आत्म दर्शन 'जाकी कृपा पगु गिरि लघै' के बजाय इस बिन्दु पर टिका कि मनुष्य पगु क्यो है ? किन बातो ने उसे पगु बना दिया है ? वह अपने आप मे स्थिर क्यो नही है ? महावीर को लगा की मनुष्य हारता ह तो खुद से ही हारता है। उसकी तृष्णा, उसका क्रोध, उसका बैर ही उसे पछाड़ रहा है। वह अपनी ही हिसा-ज्वाला मे भस्म हो रहा है। वह समझता है और कहता है कि 'माया महाठगिनि हम जानी' और माया से जूझने के बजाय उसे अंगीकार कर रहा है ऐसे अकर्मण्य मनुष्य को प्रभु अपना

सहारा कैसे देगे ? मनुष्य बाहर तो बहुत पराक्रमी बना है । नभ-जल-थल नापने लगा है । उसके एक-एक सकेत पर महायुद्ध भड़क सकते है । कितने ठाठ से उसकी प्रभुता, राज्य, कारोबार, सम्प्रदाय, उद्योग-ससार व्यापार-व्यवसाय, धर्म-सस्थान आदि-आदि चल रहे है ; फिर भी वह पगु है अपने-आप से ही मात खा जाता है । इसलिए महावीर मनुष्य के हाथ मे ऐसा पराक्रम थमाना चाहते थे जो उसे अपनी मुक्ति का बोध दे और शक्ति दे ।

… पर क्या महावीर की यह सब विरासत हम छू सके है । अपने मे उतार पाये है, उनकी बिछायी पटरियो पर चल पाये है ? न हम इतने पराक्रमी परमवीर, क्रातिकारी आत्मदर्शी को छोड सके है और न ग्रहण कर सके है । तो हमने क्या किया कि अपना-अपना महावीर उठाया और अपनी ही बिछायी पटरियो पर दौड चले है । रथ मे महावीर है और पहिये पर हम घूम रहे है—खूब तृष्णा बाँट रहे है, परिग्रह सजा रहे है, स्वार्थ की चरड-चू मचा रहे है और आत्मबोध तथा समाजबोध को कुचल रहे है क्या वह समय नही आ गया है कि जब हम अपनी बिछायी पटरी से उतर जाएँ और महावीर की विराट् विरासत को लेकर नये सिरे से चलना शुरू करे । अखण्ड, सहज और विदेही होकर महावीर का जीवन जीये ।

क्या हम इसी वाटरमार्क (जल-चिह्न) पर महावीर की विरासत के उत्तराधिकारी माने जाते रहेगे कि 'हम रात मे नही खाते, जैन है' या हमारी रूह मे यह वाटरमार्क भी उतरेगा कि महावीर का बन्दा है यह'—झूठ नही बोलेगा, क्रोध-कपट नही करेगा और माया नही जोडेगा ।'

—(वीर निर्वाण विचार सेवा, इन्दौर के सोजन्य से)

卐

संगीत से समाधि

भक्ति के लिए तन्मयता और तन्मयता के लिए नांद-सौन्दर्य आवश्यक है । नांद सौन्दर्य की भावना संगीत को जन्म देती है । वीणा की झंकार, वेणु की स्वर-माधुरी मृदग-मुरज-पर्णव-दर्दुर-पुष्कर-मंजीर आदि अनेक वाद्य प्राणों मे एकीभाव उत्पन्न करते है, एकीभाव से ध्यान-सिध्दि होती है मन-वचन-काय एकनिष्ठ होकर समाधि का अनुभव करते है ।

तुम स्वयं को दीन और दयनीय न समझना । तुम इस ससार के नमक हो, प्राण हो । नमक स्वाद का सार है, लेकिन यदि वह स्वाद-रहित बन जाए, तो मिट्टी मे फेंक देने और पैरों से कुचलने के लायक बन जाएगा, इसी तरह तुम भी अपना सत्त्व नमक खोकर पैरो तले कुचल डालने योग्य न बनाना । तुम इस संसार के प्रकाश हो ।

—ईसा

महावीर का नैतिकता-बोध

डॉ कमलचन्द सोगानी

[महावीर ने केवल स्व-पर का भेद-विज्ञान ही प्राप्त नही किया था, वरन् 'मै' और 'तुम' के सम्बन्ध को भी भली-भाँति व्यावहारिक एवं सामाजिक जीवन से अनुभव में उतार लिया था, तभी वे अध्यात्म साधना की ओर झुके थे।]

विश्व-इतिहास मे ऐसे अनेक महापुरुष हुए हैं, जिन्होने मानव को पाशविक मनोवृत्तियो की दासता से निकल कर नैतिक जागरण के पथ पर चलने को प्रेरित किया है। ऐसे महापुरुष किसी एक देश, जाति, सम्प्रदाय और धर्म की निधि न होकर मानव जाति की सम्पत्ति होते है। ऐसे ही महापुरुषों की गणना मे महावीर का नाम गौरव से लिया जाता है। वे विश्व के महानतम युग-प्रवर्तकों मे से है। महावीर ने अपनी साधना के परिणाम-स्वरूप यह घोषणा की कि व्यक्ति और समाज का उत्थान नैतिकता के अभाव मे सम्भव नही है नैतिक जागृति से व्यक्ति का समुचित विकास होकर समाज मे शांति-पूर्ण सहअस्तित्व की स्थापना होती है। इस तरह महावीर कोरे व्यक्तिवादी नही थे, न ही कोरे समाजवादी। उनकी दृष्टि मे व्यक्ति और समाज दोनो का ही उचित सतुलन है। उन्होने जहाँ एक ओर व्यक्ति के नैतिक जागरण की बात कही, वहाँ दूसरी ओर उसके सामाजिक दायित्वो की अवहेलना करना उचित नही समझा। कभी-कभी यह कहा जाता है कि महावीर ने वैयक्तिक आत्मानुभूति को अत्यधिक महत्त्व देकर समाज-सृजन को गौण कर दिया, पर ऐसा सोचना-समझना उचित नही है। महावीर का मन्तव्य यह प्रतीत होता है कि आत्मानुभूति के पश्चात् ही समाज मे नैतिक मूल्यों का सृजन किया जा सकता है। इसका प्रमाण यह है कि अपनी बारह वर्ष की साधना के परिपूर्ण होने

से पहिले महावीर ने कभी कोई बोध नही दिया। वे इस बात के दृढ समर्थक प्रतीत होते है कि समाज मे आधारभूत नैतिक मूल्यो का निर्माण आत्मानुभूति के बिना सम्भव नही है। इसलिए यह कहना अनुचित है कि महावीर समाज छोड कर चले गये और एकान्त मे जाकर बैठ गये। वास्तव मे उनका सारा जीवन सामाजिक समस्याओ से पलायनवाद न होकर उन समस्याओ के स्थायी और आधारभूत हल को ढूढ निकालने का सघर्ष था। वे जीवन के स्थूल सघर्षो मे अपने आपको फँसाने की अपेक्षा उन सघर्षो के मूल को पकडना अधिक महत्वपूर्ण समझते थे। महावीर का प्रयास उस वैज्ञानिक की भॉति था, जो सामाजिक स्थूल द्वन्दो से हटकर अपनी प्रयोगशाला मे उन बातो की खोज करता है, जो समाज के जीवन को परिवर्तित कर सके। इसलिए महावीर वैज्ञानिक के सदृश एक अर्थ मे गहनतम सामाजिक थे। उन्होने अपने जीवन का अधिकाश भाग समाज मे नैतिक मूल्यो के निर्माण मे ही लगाया। इतिहास इसका साक्षी है। वे बैठे नही, किन्तु चलते ही गये और अन्त तक चलते ही गये। यह था महावीर के जीवन मे 'स्व' और 'पर', 'मै' और 'तू' का समन्वय जो लोग महावीर को केवल आत्मानुभूति का पैगम्बर समझते है, वे उनके साथ न्याय नही करते है। महावीर तो आत्मानुभूति और समाज मे नैतिक मूल्यो के सृजन के जीते-जागते उदाहरण है।

नैतिक मूल्यो के सन्दर्भ मे महावीर ने व्यक्ति और उसके सामाजिक दायित्व पर पूर्ण बल दिया। सर्वप्रथम महावीर ने व्यक्ति को आत्मज्ञ होने की प्रेरणा दी, क्योकि इसके बिना निर्भयता प्राप्त नहीं हो सकती और निर्भयता के बिना सामाजिक दायित्वो का निर्वाह भली प्रकार नही हो सकता। जो व्यक्ति लौकिक प्रशसा-निन्दा के भय से भयभीत है, परलोक की उधेडबुनो मे ग्रस्त है, मरण-भय से आतकित है, आकस्मिक एव अरक्षा-भय से चिन्तित है, वह मानसिक सन्तुलन के अभाव मे सामाजिक नैतिकता का पालन नही कर सकता। इस तरह से जो महत्व मुह के लिए चक्षु का है, वही महत्व नैतिकता के लिए आत्मज्ञता और निर्भयता का है। दूसरी बात महावीर ने व्यक्ति के विकास के लिए कही। वह थी 'उन सब इच्छाओ का जन्म न होने दो, जो व्यक्तित्व का ह्रास करने वाली हो।' जिस व्यक्ति मे सदैव भौतिक सम्पदाओ को प्राप्त करने की इच्छा रहती है, वह कभी भी समाज मे नैतिक मार्ग का अनुशरण नही कर सकता। अत महावीर ने कहा कि इच्छाओ का परिमार्जन करो। महावीर का यह भी कहना था कि जो व्यक्ति अविवेकी परम्पराओ से चिपके रहने की प्रवृत्ति वाला होता है, वह सदैव भूतकाल का ही अनुगामी होने के कारण उज्ज्वल भविष्य का निर्माण नही कर सकता। अत उन्होने कहा कि अन्ध परम्पराओ की दासता व्यक्तित्व को विकासोन्मुखी बनाने मे बाधक होती है। व्यक्ति वर्तमान मे न जी कर सर्वदा भूतकाल के बोझ को ढोता रहता है। इससे व्यक्ति तो पिछड ही जाता है, साथ मे समाज भी जडता को प्राप्त होकर अपनी जीवनदायिनी शक्ति से हाथ धो बैठता है। महावीर ने ये बाते व्यक्ति को उसने अपने उत्थान के लिए कही। वे इस बात को भलीभाति जानते थे कि प्रत्येक कार्य के मूल मे व्यक्ति होता है, इसलिए सर्वप्रथम शक्ति व्यक्ति को विकासोन्मुख बनाना अत्यन्त आवश्यक है। जब व्यक्ति विकासगामी बन जाता है तो सामाजिक दायित्वो के लिए उचित भूमिका तैयार हो जाती है।

महावीर व्यक्ति तक रुके नही। वे जानते थे कि व्यक्ति समाज से अलग नही होता; उसका दूसरो के प्रति भी कुछ दायित्व है। जहॉ दूसरा होता है, वही से समाज प्रारम्भ होता है। स्वस्थ समाज के लिए 'मै' और 'तू' का उचित सामजस्य आवश्यक है। महावीर ने कहा कि अनैतिक के लिए

सारा ज्ञान उसी तरह अर्थहीन है, जैसे–अन्धे के लिए जलते हुए हजारो दीपक ।

महावीर ने समाज के लिए जिन मूलभूत नैतिक मूल्यो का प्रतिपादन किया वे है–अहिसा, अपरिग्रह और अनेकात । सव प्राणियो के प्रति समभाव अहिसा है । महावीर ने कहा कि किसी भी प्राणी को मत मारो, न उस पर अनुचित शासन करो, न उसे पराधीन वनाओ, न उसे परिताप दो, और न ही उसे उद्विग्न करो, क्योकि अन्तत प्राणि मात्र तुम्हारे अपने जैसा ही है । ऊँच-नीच छुआ-छूत हिसा की पराकाष्ठाएँ है । महावीर ने स्वय दलित से दलित समझे जाने वाले लोगो को अपने गले लगाया और उनको सामाजिक सम्मान देकर उनमे आत्म-सम्मान प्रज्वलित किया । महावीर ने कहा कि समाज मे प्रत्येक मनुष्य को, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, धार्मिक एव सामाजिक स्वतत्रता है । प्रत्येक मनुष्य का अस्तित्व गौरवपूर्ण है । उसकी गरिमा को बनाए रखना अहिसा की परिपालना है। अहिसक कभी वर्ग-शोषण का पक्षपाती नही होता । वह कभी अपने आश्रितो का शोषण नही करता । मानव-मात्र के प्रति वात्सल्य उसकी स्वाभाविकता होती है वह हिसाकारक, कलहकारी और कठोर वचनो का प्रयोग नही करता वह वह सदैव हित–कारी एव प्रिय वचन बोलता है । बहुमूल्य वस्तु को अल्पमूल्य मे लेना, चोरी का माल रखना, झूठी गवाही देना, तस्करी, घूसखोरी, मिलावट आदि करना–इन सबसे दूर रहना वह अपना कर्त्तव्य समझता है । वह शाकाहारी वृत्ति का पोषक होता है शिकार, मदिरा, जुआ आदि व्यसनो को उन्हे हिसा के कारण जानकर वह त्याग देता है । अना–वश्यक एव अनैतिक कामातुरता को वह अशोभनीय समझता है । उसको कुल, जाति, रूप, ज्ञान, धन तप और प्रभुता का मद नही होता है । सबके प्रति मैत्री, गुणीजनो की प्रशसा एव दुखियो की सेवा–सुश्रूषा अहिसक प्रक्रियाएँ है । अत कहा जा सकता है जैसे प्यासो के लिए पानी और रोगियो के लिए औषधि आवश्यक है, वैसे ही ससार मे प्राणियो के लिए अहिसा है ।

महावीर इस बात को भली-भाति जानते थे कि आर्थिक असमानता और आवश्यक वस्तुओ का अनुचित संग्रह समाज के जीवन को अस्त-व्यस्त करने वाला है । इनके कारण एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का शोषण करता है । मनुष्य की इस लोभ-वृत्ति के कारण समाज अनेक कष्टो का अनुभव करता है । इसलिए महावीर ने कहा कि आर्थिक असमानता को मिटाने का अचूक उपाय है–अपरि-ग्रह । परिग्रह के सव साधन सामाजिक जीवन मे कटुता, घृणा और शोषण को जन्म देते है । अपने पास उतना ही रखना जितना आवश्यक है, वाकी सव समाज को अर्पित कर देना अपरिग्रह पद्धति है। धन की सीमा, वस्तुओ की सीमा–ये सब स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए जरूरी है । धन हमारी सामाजिक व्यवस्था का आधार होता है और कुछ हाथो मे उसका एकत्रित हो जाना, समाज के एक बहुत बडे भाग को विकसित होने से रोकता है । जीवनोपयोगी वस्तुओ का सग्रह समाज मे अभाव की स्थिति पैदा करता है । ऐसे परिग्रह के विरोध मे महावीर ने आवाज उठायी और समाज मे अपरि ग्रह के नैतिक मूल्यो की स्थापना की ।

आर्थिक असमानता के साथ-साथ वैचारिक मतभेद भी समाज में द्वन्द को जन्म देते है, जिसके कारण समाज रचनात्मक प्रवृत्तियो को विकसित नही कर सकता है । वैसे तो वैचारिक मतभेद मानव-मन की सृजनात्मक मानसिक शक्तियो का परिणाम होता है, पर उसको उचित रूप में न सम-झने से मनुष्य मनुष्य के आपसी मतभेद सकुचित सघर्ष के कारण वन जाते है और इससे समाज

शक्ति विघटित होती है। समाज के इस पक्ष को महावीर ने गहराई मे समझा और एक ऐसे नैतिक सिद्धात की घोषणा की, जिससे मतभेद भी सत्य को देखने की दृष्टियाँ बन गये और व्यक्ति समझने लगा कि मतभेद दृष्टि-पक्ष-भेद के रूप मे ग्राह्य है। वह सोचने लगा कि मतभेद सघर्ष का कारण नही, किन्तु विकास का द्योतक है। वह एक उन्मुक्त मस्तिष्क की आवाज है। इस तथ्य को प्रकट करने के लिए महावीर ने कहा कि वस्तु एक पक्षीय न होकर अनेकपक्षीय होती है, वह अनेकातिक है, एकातिक नही। अनेकात के इस बौद्धिक-नैतिक मूल्य से समाज मे विचारो का घर्षण ग्रहणीय बन गया। मनुष्य ने सोचना प्रारम्भ किया कि उसकी अपनी दृष्टि ही सर्वोपरि न होकर दूसरे की दृष्टि भी उतनी महत्वपूर्ण है। उसने अपने क्षुद्र अह को गलाना सीखा। समाज के इस बौद्धिक-नैतिक मूल्य ने सत्य के विभिन्न पक्षो को समन्वित करने का मार्ग खोल दिया। सत्य किसी एक व्यक्ति, धर्म, राष्ट्र मे बधा हुआ नही रह गया। प्रत्येक व्यक्ति सत्य के एक नये पक्ष की खोज कर समाज को गौरवान्वित कर सकता है। समाज के इस बौद्धिक-नैतिक मूल्य ने अनुचित वैचारिक सघर्ष को समाप्त करने का निमन्त्रण दिया और कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने के लिए आह्वान किया। अनेकात समाज का बौद्धिक नैतिक गत्यात्मक सिद्धात है, जो जीवन मे वैचारिक गति उत्पन्न करता है।

अत. यह कहा जा सकता है कि महावीर ने नैतिक जागरण के लिए व्यक्ति और समाज के परिप्रेक्ष्य मे जो बोध हमे दिया, वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है इससे हमारा बौद्धिक, आर्थिक और राजनीति जीवन परिमार्जित होता है, जिसके फलस्वरूप समाज सुगठित एव समुन्नत हो जाता है। विश्व के राष्ट्र अहिसा, अपरिग्रह और अनेकान्त के माध्यम से युद्ध, शोषण, व तनाव को समाप्त कर शाति समानता व सहअस्तित्व के वातावरण से मानव कल्याण का मार्ग प्रशम्त कर सकते है। अपने नैतिक बोध के इन्ही दूरगामी प्रभावो के कारण महावीर किसी एक देश व समाज के न होकर मानव जाति के गौरव के रूप मे प्रतिष्ठित हुए।

(श्री वीर निर्वाण विचार-सेवा, इन्दौर के सोजन्य से)

★

हमारा जीवन नीति की बुनियाद पर जिस दिन प्रतिष्ठित हो जाएगा. उस दिन हिंसा का स्वर मंद पड़ जाएगा, अनीति काफूर हो जाएगी और घृणा-द्वेष आदि का चिन्ह भी न रहेगा।

मुक्ति पर्व और हम

रूपवती "किरण"

[संसार में सभी प्राणी दु खी हैं । दुःख से सब मुक्ति चाहते हैं । किन्तु आत्म ज्ञान के बिना सुख नहीं मिल सकता और न दु ख की मुक्ति हो सकती है । इसलिए आत्मानुभव की ओर लक्ष्य देना चाहिये ।]

सुख क्यों नहीं ?

युग ने नई करवट ली है । एक ओर घातक शस्त्रो का निर्माण हो रहा है, तो दूसरी ओर शाति को गुहारा जा रहा है । शस्त्रों का बाजार वृद्धि पर है । अत. शस्त्रो के व्यापारी राष्ट्र, लघु राष्ट्रो को पड़ौसियों से भिड़ाये रखते है, और साथ ही शाति का राग भी अलापते है । यह अर्थ प्रधान युग है । मनुष्य अर्थ-सचय मे निरंतर सलग्न बौखलाया हुआ दूसरो पर प्रहार कर रहा है , क्योकि वह आकांक्षाओं से आक्रात विकल है । तृषित व्यक्ति जैसे जल की खोज मे सतत प्रयासरत रहता है ; उसी प्रकार युग-युग दुखी प्राणी सुख की खोज मे निरतर व्यस्त है । सुख-प्राप्ति सबका एक मात्र लक्ष्य है । यद्यपि हमारी यह अनवरत दौड़ हृदय तक नही पहुचा सकी है , तथापि हम आशावान है । इस असफलता का कोई कारण अवश्य होना चाहिए कि प्रयत्नरत रहने पर भी हमे सुख क्यो नही मिला ? यदि हम क्षणेक शात हो अपने क्रिया कलापों पर दृष्टिपात करे, तो हमे अपनी भूल ज्ञात हो सकती है । लक्ष्य यथार्थ होते हुए भी मार्ग गलत पकड़ लिया है । साध्य के अनुरूप साधनों को न अपना कर विपरीत साधनो से साध्य की सिद्धि नही होती ।

संपत्ति ही विपत्ति है

इतिहास साक्षी है कि अनेक वैभवशाली पुरुष भी वैभव से सुख प्राप्त नही कर सके । चक्रवर्ती की अटूट सपत्ति, छह खड का स्वामित्व भी उसे सुखी

नही कर सका । भगवान महावीर की सेवा मे तो देवगण सदैव सर्तक हो लगे रहते थे उनके सम्मुख भौतिक पदार्थ का अबार लगा था, पर आत्म-तृप्ति नही हुई । इसके विपरीत सपत्ति उन्हे विपत्ति सी प्रतिभासित हुई । आत्म सुख मे किन्ही बाह्य पदार्थो की अपेक्षा नही, न ही वह अन्य पर आधारित है । ऐसा अनुभव हमे वर्तमान मे विविध प्रख्यात वैभव-शाली पुरुषो के जीवन से तथा अपने जीवन से भी हो रहा है । लगता है जैसे सपत्ति का अनुपात ही ही विपत्तियो का आह्वान करता है । और जब व्यक्ति अनेक असह्य विपत्तियो से घिर जाता हैं, तो मृत्यु की कामना या उपक्रम करने लगता है । मृत्यु तो अनिवार्यत. होती ही है, पर हमारी इच्छा से असमय मे नही । यह हमारी महान भूल है कि मृत्यु सकट से मुक्त करती है , तथापि उससे अतीत का विस्मरण अवश्य हो जाता है । हमारी इच्छाएँ, पदार्थो के प्रति लालसा प्रतिक्षण सकट उपस्थित करती रहती है । फिर भी, इसी भूल की पुनरावृत्ति अनवरत चल रही है । हम तन धनादि बाह्य पदार्थो को कभी सुख का साधन एव प्रतिकूलता मे दुख का कारण मान लेते है ।

मृत्यु मुक्ति दाता नहीं

मृत्यु से तन नष्ट हो जाता है, तन के साथ की समस्त परिस्थितियाँ परिवर्तित हो जाती है, पर हम तो हमी रहते है , बदलते नही । अनादि काल से राग-द्वेषादि कषायो से जैसे विकृत हम चले आ रहे है, आज वैसी ही विकृति बनी हुई है । नवीन जन्म धारण करने पर नूतन तन भले ही मिले, पर हम यथावत् मलिन बने रहते हैं । इसलिए तन मिलते ही जीवन पुन अनेक समस्याओ से घिर जाता है, क्योकि तन की आवश्यकताये ज्यो की त्यो है । मन की तृष्णा और विस्तृत हो जाती है । मृत्यु से मुक्ति नहीं और झझटे बढती है ।

सुख जीव का गुण है

मृत्यु के पश्चात् जीवन, जीवन के पश्चात् मरण, इन्द्रिय जन्य सुख-दुख के खेलो का क्रम रात्रि दिवस, पूनम और अमावस की भाति क्रम चलता रहा है और आगे भी चलता रहेगा । आत्मा इस चक्र मे अपनी अज्ञानता से लुटता पिटता रहता है, जबकि वह इन सबसे नितात भिन्न है । इस भिन्नत्व को जिन आत्माओ ने परखा, उन्होने आत्म बोध के अक्षय सुख का भोग किया । सुख आत्मा का स्वाभाविक गुण है । इसलिए वह सनातन समय से सुख के लिए व्याकुल है । सुख पर उसका पूर्णत अधिकार है सुख प्राप्त करके ही वह तृप्त हो विश्राम ले सकता है, उसके पूर्व नही ।

साध्य-साधन मे वैषम्य

यह बात दूसरी है कि हम सुख प्राप्ति के विपरीत साधनो को अपनाये हुए है । जिस मार्ग पर चल रहे है, उस पर अपना इष्ट नही पा सके है । बुद्धि वैपरीत्य के कारण हम पति-पुत्र, स्वजनो के बधन, सपत्ति के बधनो मे वृद्धि कर सुख मानते है । स्वयमेव बधनो का निर्माण कर सुखी होने का हर्ष मनाते है । बधन और सुख दोनो का सम्मिलन असभव है। तथा इस तथ्य से अनजान हो रहे है । बधन का अभाव ही मुक्ति है 'पराधीन सपने हु सुख नाही' यही युक्ति चरितार्थ होती है । जब तक हम अन्य द्रव्यो पर आधारित हो उनसे अपना कल्याण अकल्याण मानते रहेगे , तब तक इस पराधीनता मे सुख दुर्लभ ही नही, असभव भी है , क्योकि पराधीनता और सुख दोनो एक साथ नही रह सकते ।

सुख चाहिए शाश्वत और पदार्थ है नश्वर । दोनो का स्वभाव भिन्न है । अन्य पदार्थो का अनुकूल परिणमन आत्मा के कार्य क्षेत्र की सीमा से बाहर है । कदाचित यह मान भी लिया जाये कि हम पदार्थो का सचय कर लेते है, तब भी यह अस्वी-

कार नही कर सकते कि एक पदार्थ को जुटाते है, तो दूसरा वियुक्त हो जाता है। इच्छाओ के अनुकूल समस्त पदार्थो का एक समय मे एकत्रीकरण उसी प्रकार शक्य नही है, जैसे तुला पर मेढको को एकत्रित कर तौलना।

स्वतंत्रता ही उपादेय

हमारे आराध्य भगवान महावीर ने मुक्ति पाई। उन्होने अपने बधन आप ही खोले। किसी चेतन या अचेतन पदार्थो ने करुणा कर उन्हे मुक्ति प्रदान नही की। नश्वर तन मे निवास करते हुए इन्द्रिय जन्य सवेदाओ से ऊपर उठकर आत्म पुरुषार्थ का आधार ले स्वतत्र हो जीवन जिया। तब फिर स्वानुभूति कर शाश्वत सुख पा गये। अपना प्राप्य पाने के लिए उन्होने किसी के द्वार नही खटखटाये, अपितु अतर को टटोला, अनुभव की तुला पर बुद्धि को तोला, चिरकाल से बद ज्ञान के द्वार को खोल आत्म वैभव मे निमग्न हो गये। यह उनकी अतर की निरतर खोज का सुपरिणाम था।

जगत मुख्यत दो पदार्थो का मेल है जीव और अजीव। अजीव मे विशेषकर पुद्गल है। जीव सुख-दु.ख का सवेदन करता है, पुद्गल नही। जीव अदृष्ट है, अतएव दृश्यमान अजीव पदार्थो पर ही हमारी दृष्टि जाकर अटकती है। हम उसमे सुख खोजते है। खोज बाहर कर रहे है, अतर मे नही। हमने उन द्वारो पर दस्तक दी है, जिनमे श्रवण शक्ति नही है। उनसे याचना की है, जो स्वय याचक है। अन्य से आत्म तत्व को पृथक् कर 'स्व' से एकत्व स्थापित कर ममकार, अहकार को तिलॉजलि देकर ही सुख पाया जा सकता है।

ममकार और अहकार आत्मा के ये दो शत्रु है। जब तक हम इनके आधीन रहते है, तब तक अपने से नही जुड सकते। ममकार वह गहन श्याम अधकार है, जिसमे प्राणी को 'स्व-पर' का ज्ञान नही होता। स्व-पर का भेद-विज्ञान न होने से वह सब मे एकत्व मानकर अहंकार करता है अर्थात् 'मै' के कर्त्तव्य को लाद देता है जबकि प्रत्येक वस्तु स्वतंत्रतया स्वपरिणमन मे रत है। अहंकार हमारे अज्ञान का फल है। शिष्य ने प्रश्न किया कि जीव अज्ञानी कब तक रहता है? आचार्य श्री उत्तर देते है कि जब तक जीव अपने शुद्ध स्वरूप से अत्यत भिन्न अन्य समस्त पदार्थो मे एकत्व और कर्त्तव्य का अहंकार करता है।

अहंकार अवगुणों की खान

लौकिक जीवन मे भी अहकार का अन्य गुणो से जन्मजात विरोध है। अहकार के पाषाण पर समता के अकुर प्रस्फुटित नही होते। अहकारी व्यक्ति स्वय को सर्वोपरि समझ सबसे अलग-अलग रहता है। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' समस्त प्राणियों मे भी मेरे सदृश गुण शक्ति रूप मे विद्यमान है, यह तथ्य उसके कठगत नही होता। हो भी कैसे? अहकारी अपने से भी अपरिचित है। उसने आत्म स्वभाव को नही जाना और जिसका अज्ञान इतनी चरम सीमा पर हो, वह अन्य चेतन-अचेतन को कैसे जान सकेगा? अहकारो के गुण भी यथार्थत अवगुण ही है। जसे वह किसी पर दया करता है, तो उसका भा कारण अहकार है। जिस व्यक्ति पर दया की जा रही है, यदि वह विनम्र हो उस अनुग्रह को ग्रहण नही करता तो अहकारी घायल सर्पिणी-सा तडप कर क्रूर हो उठता है। यह दयालुता नही, दया का आडबर लिये मात्र प्रदर्शन है। 'स्व' व 'पर' के यथावत् स्वरूप की श्रद्धा तथा भेद पूर्वक ही दया होती है। जैन दर्शन भेदज्ञानी दयालु स्वीकार करता है।
का उद्गम स्वय उसका
स्वरूप दया की
शीघ्र ही शुष्क हो
कषायो से अ

दयालु का एक मात्र लक्ष्य 'स्व' की ससिद्धि कर राग द्वेष की खाई पार कर पूर्ण वितरागता पाना है। ऐसा आत्म-निष्ठ व्यक्ति अपने को जब तक स्वरूपाचरण मे निर्बल पाता है, तब-तक वह निरपेक्ष भाव से सदाचरण मे प्रवृत्त होता है।

स्वभाव ही धर्म है

प्रत्येक प्राणी का कल्याण उसी के स्वभाव मे अतर्हित है। स्वभाव ही धर्म है। आत्म धर्म को प्रकट करने के लिए आत्म स्वभाव का ही आश्रय लेना समीचीन है। अज्ञानता के कारण प्राणी धर्म के अनमोल मणि की प्राप्ति-हेतु आत्मानुभव शून्य ब्राह्य क्रिया-काड रूपी मणि रहित सर्प को वक्ष से चिपटाये है, जिससे उसे दशन का कष्ट तो प्रति क्षण मिलता है, पर आत्म धर्म का मणि नही। फलस्वरूप चतुर्गतियो मे परिभ्रमण होता है, मुक्ति रूपी निरापद स्थान की प्राप्ति नही होती।

शुभ क्रियाओ से भी धर्म की प्राप्ति नही होती। अशुभ क्रियाओ की भाति शुभ-क्रियाओ का भी अभाव होकर धर्म प्राप्त होता है। अतर इतना है कि अशुभ क्रियाओ का अभाव प्रयत्न पूर्वक करना पडता है, परन्तु शुभ क्रियाये सहज ही छूट जाती है। आत्म स्वाभाव मे किसी प्रकार की कालिमा या लालिमा नही है। वह तो श्वेत वस्त्र की भाति निर्विकार अत्यत विशुद्धतम है। अत विशुद्ध दशा की प्राप्ति मे केवल ज्ञान- क्रिया ही उपादेय है, शेष सब हेय है। 'ज्ञान ज्ञाने प्रतिष्ठति' ज्ञान का ज्ञान मे प्रतिष्ठित होना ही उसका यथार्थ कार्य है। अस्तु आत्मा का यथार्थ स्वरूप जानकर उसमे स्थित होने का प्रयत्न आवश्यक है। चरित्र की पूर्ण सिद्धि तक जो प्रशम्त क्रियाये होती है, उनको धर्म के स्थान पर स्थापित करना योग्य नही है। क्रिया और धर्म दोनो के स्थान भिन्न भिन्न है। अतएव शुभ क्रियाये कर धर्म हो गया, ऐसा सतोष लाभप्रद नही है। धर्म का श्रद्धान उसकी यथोचित परिभाषा का ज्ञान एव उससे तन्मय होने का सतत प्रयास ग्राह्य है।

धर्म की यथार्थ परिभाषा न जानकर मूढ बुद्धि मदिर मसजिद, रामकृष्ण, अल्लाताला के नाम पर झगडते है। मानव निर्मित मन्दिर, मसजिदो मे धर्म नही। जातिवाद, समाजवाद, गोरे-काले मै धर्म नही है। धर्म तो है प्राणीमात्र का स्वभाव, धर्म से ओत-प्रोत है–प्रत्येक प्राणी। धर्म किसी को लडाता नही, अपितु जिसने धर्म धारण किया है, अपने यथार्थ स्वरूप को पहिचान, उसका अनुभव कर आनन्द प्राप्त किया है, वह धार्मिक व्यक्ति लोक मे भी सदाचरण के द्वारा अलौकिक जीवन जीता हुआ पारस्परिक कलह वैषम्य को दूर कर मैत्री, सद्भावना स्थापित कर विश्वकल्याण की मगल कामना करता है।

धर्म का माहात्म्य

धर्म प्राणी की निजी सम्पत्ति है। इमसे सुख शाति नही मिली तो और कहाँ मिलेगी ? अधर्म का फल बधन, ससरण, परतंत्रता एवं धर्म का फल मुक्ति है, परम स्वातत्र्य है। धर्म समस्त रोगो की निवृत्ति का सहज उपाय है। प्रत्येक प्राणी जन्म-जरा मरण त्रिरोगो से पीडित है। रोगो का मूल अज्ञान है। रोगहरण अचूक औषधि ज्ञान है। ज्ञान 'स्व' मे स्थितकर धर्म प्रकट कर ऐसा अपूर्व स्वास्थ्य प्रदान करता है, जिससे हम आज तक वचित रहे है। तत्पश्चात् आत्मा पुन कभी अस्वस्थ नही होता। यह धर्म की विशद महिमा है।

भगवान महावीर का सर्वोदय तीर्थ इसी धर्म की ओर प्रेरित करता है। उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म अखिल विश्व के प्राणियो को उचित दिशा निर्देशन दे सुख को उपलब्ध कराता है। इससे जीव का चिरकाल का अज्ञान रूपी अन्धेरा नष्ट हो ज्ञान का

सहज स्फुरण होता है एवं सहस्रो सूर्यो से भी प्रखर कैवल्य ज्योति प्रकट हो जाती है।

यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत पीजिए।
चिर भजैं विषय कषाय, अब तो त्याग निज पद वेइये।।
कहा रच्यो पर पद मे, न तेरे पद यहै क्यों दुख सहै।
अब 'दौल' होहु सुखी स्वपद रचि दाव मत चूको यहै।।

अध्यात्म कवि दौलतरामजी अपने माध्यम से ससार के दुखी प्राणियों को सीख देते है कि ससार मे राग रूपी आग निरंतर जीव को जला रही है। इसके शमन हेतु अत्युत्तम समता रूपी अमृत का सदैव पान करना चाहिए। चिरकाल से विषय-कषायों मे तन्मय हो प्रवृत्त हो रहे हो, पर सुख नही मिला। अब तो उनका त्याग कर आत्म स्वरूप को प्राप्त करो। यह तेरा पद नही है, अपद है। इनमें रचकर व्यर्थ ही क्यों दुःख सह रहा है ? हे दौलत-राम अब उनसे विमुख हो निजपद अर्थात् आत्मपद में लगकर चिरंतन सुख भोग। इस दुर्लभ मानव जीवन का मगल अवसर मत चूको।

परम पावन मुक्ति पर्व

निर्वाणोत्सव वर्ष का अर्थ है–मुक्ति वर्ष। इसे हम पर्व रूप में मना रहे है। अतएव यह हमारे मुक्त होने का पर्व है। हम मुक्त हो उन बधनों से, जिसका हम चिरकाल से निर्माण करते आ रहे है। समय आ गया है कि हम उन्हे निर्भीक हो तोडने का संकल्प ले। भगवान महावीर का स्मरण करने का एकमात्र ध्येय बधन मुक्त हो सुखी होना ही है। यह सनातन नियम है कि किसी लक्ष्य की प्राप्ति मे पथ-भ्रष्ट व्यक्ति मजिल पर पहुँचे व्यक्ति को अपना आदर्श मानकर उसके द्वारा निर्दिष्ट या आचरित मार्ग पर गतिशील हो लक्ष्य को उपलब्ध होता है।

★

भयपूर्ण परिस्थितियों से मत डरो, व्याधि से मत डरो, शीघ्र-घाती रोग से मत डरो, बुढ़ापे से मत डरो मौत से मत डरो, किसी से भी मत डरो। (वीर वाणी)

जो अपने को जानता है वह पराये को जानता है जो आत्म को जानता है वह अध्यात्म को जानता है। (वीर वाणी)

वर्तमान परिस्थितियों में महावीर के सिद्धान्त

हस्तीमल झेलावत

भारतीय संस्कृति के प्राचीन इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों की ओर हम जब दृष्टिपात करते है, तो हमारे समक्ष वैशाली के राजकुमार तीर्थंकर महावीर के आदर्श जीवन की दिव्य झलक दृष्टि-गोचर होती है। आज से लगभग २५७३ वर्ष पूर्व भरत क्षेत्र मे जन्म लेने वाले इस क्षत्रिय राजकुमार को सभी भौतिक सुख-सुविधाएँ उपलब्ध थी। लेकिन जब वर्द्धमान ने यौवन के आगन मे कदम रक्खा, तो उसके अतरमन मे सहसा द्व द होने लगा। उनका मन सासरिक विषय भोगो की आशक्ति से दूर प्राणी-मात्र के कल्याण की दिशा मे रमण करने लगा।

वर्द्धमान स्वय दुखी नही थे तो क्या हुआ, अपने चारो ओर तो वे दुखी प्राणियो को देख रहे थे। धर्म के नाम पर पशुओ के रक्त से होली खेली जा रही थी। पशुओ का आर्तनाद ओर दीन-दुखियो का करुण क्रन्दन उनके हृदय को विदीर्ण किया जा रहा था। उन्होने सोचा कि इतने शोषितो-पीडितो एव सतप्तो के बीच भोगमय जीवन व्यतीत करना मेरे लिए उचित नही है। भौतिक साधनो से सपन्न होने पर भी वे भौतिक सुखो को नश्वर मानकर ३० वर्ष की अल्पायु मे प्राणी मात्र के लिए शान्ति मार्ग खोजने निकल पडे।

[देश-विदेश मे अहिसा व प्रेम से ही शाति स्थापित हो सकती है। अहिसा शान्ति का सफल मन्त्र है।]

वर्द्धमान के मस्तिष्क मे जीवन ओर आत्मा से सम्बन्धित प्रश्नो का जाल बिछा हुआ था। उन

प्रश्नो के समाधान हेतु उन्होने लगभग साढे बारह वर्ष तक कठिन तप साधना की । प्राणी मात्र के जीवन में वास्तविक आत्म शाति व चिर स्थायी सुख कैसे प्राप्त हो, इसका अन्वेषण किया । अन्त मे उन्हे केवलज्ञान हुआ । इस प्रकार स्व पुरुषार्थ व दृढ निष्ठायुक्त साधना मे आत्म शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर भगवान महावीर बने ।

भगवान महावीर ने जो सिद्धांत ससार को दिये, वे किसी विशिष्ठ श्रेणी के मनुष्यो, किसी विशेष देश तथा किसी विशेष काल के लिए ही नही थे अपितु वे सार्वभौमिक और देश व काल की सीमाओं से परे थे । उनके द्वारा प्रतिपादित सत्य, अहिसा, अपरिग्रह व अनेकान्त आदि के सिद्धात आज भी उतने ही सत्य, उपयोगी व व्यवहारिक है, जितने कि वे उनके समय मे थे । उन्होने मुक्ति का जो मार्ग दिखलाया, वह प्राणी मात्र के लिए खुला है । प्रत्येक प्राणी अपने पुरुषार्थ के बल पर उस मार्ग पर स्वाधीनता पूर्वक चल सकता है ।

भगवान महावीर की अहिसा केवल धार्मिक क्षेत्र की अहिसा न होकर प्राणि मात्र के जीवन के प्रत्येक व्यवहार मे निहित है । विचार मे अहिसा, वाणी मे अहिसा और व्यवहार मे अहिसा से ही जीवन आदर्शमय बन सकेगा । वर्तमान अणुयुग मे अहिसा को ही सार्वभौमिक धर्म के रूप मे स्थान दिया जा जकता है । क्योंकि व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के जीवन मे इसकी आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है । अहिसा केवल वाद-विवाद अथवा तर्क का सिद्धांत न होकर मनुष्य जीवन के व्यवहार और आचरण का सिद्धात है । मानवीय प्रेम साम्प्रदायिक समभाव और सहअस्तित्त्व के विश्वास की भावना का पोषण अहिसा से ही सभव है ।

महावीर ने वैर, वैमनस्य, द्वेष, कलह, घृणा, ईर्ष्या, डाह, दु सकल्प, दुर्वचन, क्रोध, अभिमान, दम्भ, लोभ-लालच, शोषण, दमन आदि जितनी भी व्यक्ति और समाज की ध्वसमूलक विकृतियाँ है, उनको हिसा की सज्ञा दी है । उन्होने हिसा का प्रतिकार अहिसा से तथा घृणा का प्रतिकार प्रेम से करने का सदेश दिया । अहिसा प्रकाश की अन्धकार पर, सद्भाव की बैर पर, अच्छाई की बुराई पर विजय का उद्घोष है ।

आज देश मे चारो और हिसा का ताडव नृत्य हो रहा है । चारो ओर असन्तोप, आदोलन, लूटपाट व आगजनी की घटनाएँ दैनिक जीवन का क्रम बनी हुई है । आदोलनो का स्वरूप हिसक होने के परिणाम स्वरूप देश की करोडो रुपयो की सपत्ति देशवासियो द्वारा ही नष्ट की जा रही है । ऐसी दुष्कर परिस्थितियो मे महावीर की अहिसा ही प्रेम व सद्भाव के वातावरण मे देश मे शाति स्थापित करने मे सहायक हो सकती है । वर्तमान मे विश्व के राष्ट्रो मे भी तनाव की स्थिति बनी हुई है । एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के अस्तित्व को मिटाने पर तुला हुवा है । शस्त्रो की होड मे हिसा का पोषण हो रहा है । ऐसी विषम स्थिति मे महावीर की अहिसा का सन्देश है कि प्रत्येक राष्ट्र सह अस्तित्व और सहयोग के आधार पर ही जीवित रह सकता है । प्रेम, सहयोग एव समभावपूर्ण जीवन व्यवहार के सम्बल पर ही अपने पुरुषार्थ के द्वारा विकास पथ पर सफलतापूर्वक अग्रसर हो सकते है । 'जिओ और जीने दो' के शाश्वत सिद्धात को आत्मसात करके ही वे अपने नागरिको के जीवन का बहुमुखी विकास कर सकेंगे ।

भगवान महावीर को हम एक वास्तविक समाजवादी के रूप मे उस समय पाते है, जबकि उनका अपरिग्रहवाद का सिद्धात मनुष्य को आवश्यकता से अधिक वस्तुओ के सग्रह का निषेध करता है । उन्होने परिग्रह परिमाण का उपदेश देते हुवे आवश्यकताओ को सीमित करने को कहा । अति-

धन सग्रह की लालसा पर अकुश एव उसकी सीमा मे बाधने से उनका यही तात्पर्य था कि सग्रह वृत्ति के कारण जो वर्ग-सघर्ष हो रहा है वह स्वयमेव ही दूर हो जावे। उन्होने कहा कि सग्रहवृत्ति मानव समाज के लिए घातक होकर समाज मे विषमता उत्पन्न करती है। व्यक्ति की इच्छाए तो आकाश की भाति अनत है परन्तु परिग्रह को सीमित करके ही वह सतोषपूर्वक जीवन यापन कर सकता है।

मनुष्य तृष्णाओ और इच्छाओ की पूर्ति के लिए तरह तरह के अन्याय और अत्याचार करता है वह यह नही सोचता है कि हमारे इन कार्यो से अन्य को कितना कष्ट हो रहा है। देश मे आज सग्रहवृत्ति के परिणाम स्वरूप ही आवश्यक वस्तुओ का बनावटी अभाव बना हुवा है। अभाव व अनि-श्चितता की स्थिति मे लोगो को अनेक कष्ट उठाने पड रहे है इसी प्रकार अनीतिपूर्वक धन कमाने की होड़ के वश खाद्य पदार्थो मे मिलावट एव बढिया वस्तु के स्थान पर घटिया वस्तु देना प्रतिदिन की घटनाएँ है। विडम्बना तो यह है कि इतना सब अन्याय, अत्याचार एव अनैतिकता करने के बाद भी मनुष्य की सभी तृष्णाएँ व इच्छाएँ पूरी नही हो पाती।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि ससार के अधिकाश युद्ध इन्ही तृष्णाओ की पूर्ति के लिए लड़े गये और उनके फलस्वरूप जन-धन की अपार हानि हुई है। परिग्रह की मनोवृत्ति से ससार त्रस्त है। समाज का एक वर्ग साधन सम्पन्न होकर विलासिता के समस्त साधनो का उपयोग कर रहा है। जबकि निम्न वर्ग अत्यधिक परिश्रम के बाद भी भर पेट भोजन नही जुटा पा रहा हैं। आवश्यक वस्तुओ की सग्रहवृत्ति और बनावटी अभाव देश के सामने ज्वलत समस्या है शिक्षा शास्त्री व अर्थशास्त्री गहन विचार मथन के बाद भी समाधान मे सफल नही हो पा रहे है। ऐसी परिस्थिति मे भगवान महावीर ने जो समाधान अपने अपरिग्रहवाद के सिद्धात द्वारा बताया था उसकी आवश्यकता को आज महसूस किया जा रहा है।

आज जिस समाजवाद और अधिकतम सपत्ति सीमा नियम को लागू करने के लिए शासन अपने अधिकार व कानून का प्रयोग कर रहा है, भगवान महावीर ने बहुत पहले ही प्रत्येक व्यक्ति से उसको स्वत अपने ऊपर लागू करने का आग्रह किया था गाधीजी का टस्ट्रीशीप सिद्धात, समाजवाद व साम्य वाद इसी अपरिग्रहवाद की धारणा का विकसित रूप है। अतएव वर्ग सघर्ष की स्थिति से बचने के लिए, सग्रहवृत्ति की रोक के लिए, वस्तुओ के समान रूप मे वितरण और सामाजिक जीवन मे समानता के आधार पर बनाया गया अपरिग्रहवाद का सिद्धांत आज के समाजवादी युग को महावीर की महान देन है।

भगवान महावीर के अपने अनेकातवाद के द्वारा मानव के दृष्टिकोण को व्यापक स्वरूप प्रदान किया है। आज विभिन्न वर्गो, राष्ट्र, जाति व धर्मो मे जो विग्रह, कलह एव सघर्ष है, उसका मूल कारण एक दूसरे के दृष्टिकोण को न समझना है। आग्रह व हठ ही इनकी जननी है। अनेकात सकुचित एव अनुदार दृष्टि को विशाल बनाता है, उदार बनाता है। इस प्रकार यह विशालता, उदारता ही परस्पर के सौहार्द, सहयोग, सदभावना एव समन्वय का मूल प्राण है। आज के युग मे तो अनेकात की आवश्यकता अत्यधिक रूप मे अनुभव की जा रही है। समानता और सहअस्तित्व का सिद्धात तो अनेकात के बिना चल ही नही सकता।

महावीर का अनेकातवाद वस्तुत मानव का जीवन धर्म है। उन्होने कहा कि सत्य अनत है, विराट् है। कोई भी अल्प ज्ञानी सत्य को सम्पूर्ण रूप मे जान नही सकता जो जानता है वह केवल

उसका एक पहलू होता है जैसे एक नारी बालक के लिए माता, पति के लिए पत्नि, भाई के लिए बहिन पिता के लिए पुत्रीवत है अतः हम किसी भी बात को पकड कर यह नही कह सकते है कि यही सत्य है। यह तो सत्य के प्रति हठाग्रह होगा जो कि वैभवस्य व सघर्ष का कारण होगा। इसलिए अनेकांतवाद ही के प्रयोग के स्थान पर हम भी का प्रयोग बताकर समन्यपदात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

वर्तमान में देश में समय-समय पर भाषा, प्रांत, सम्प्रदाय व सत्ता परिवर्तन के नाम पर आपसी झगड़े होते रहते है। राष्ट्र की इस विकट समस्या के निराकरण की दिशा मे अनेको प्रयास भी हुवे परन्तु समस्या पर नियत्रण नही हो सकता। ऐसे समय मे महावीर का समन्वयवाद ही प्रेम और समता के आधार पर समस्या के निराकरण मे सहायक सिद्ध हो सकेगा। महावीर ने कहा कि तलवार के बल पर मनुष्य को नष्ट किया जा सकता है परन्तु उसके हृदय को नही जीता जा सकता है। मानव हृदय पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रेम व समन्वय को अपने जीवन मे आत्मसात करना होगा।

भगवान महावीर ने सत्य, अहिसा, अपरिग्रह और अनेकात के क्रातिकारी सिद्धातो द्वारा व्यक्तिवाद के स्थान पर समाजवादी सिद्धातो का ही अत्यधिक प्रचार किया है, उनके सिद्धान्त प्रेम, सहयोग, समन्वय व स्वपुरुषार्थ के आधार पर राष्ट्र के आदर्श जीवन की अभिव्यक्ति करते है। यदि व्यक्ति अपने जीवन के सद्‌गुणो के वैभव को प्राप्त करना चाहता है, तो उसे भगवान महावीर के इन शाश्वत सिद्धान्तो को अपने जीवन मे आत्मसात् करना होगा।

*

क्रोध को शाति से मारना चाहिए. अभिमान को नम्रता से, तथा लोभ को सन्तोष से जीतना चाहिए। (वीर वाणी)

सभी जीवों से क्षमा मांगना और सबको क्षमा करना, अपने पापों से निवृत्त होना ही मोक्ष मार्ग है। (वीर वाणी)

तीर्थंकर महावीर का जीवन

स्वतंत्र जैन

[वर्द्धमान महावीर का जन्म शाश्वत सौन्दर्य एवं अपूर्व सुख पाने के लिए हुआ था। अपने चारो ओर जन्म, मरण, रोग, शोक आदि से त्रस्त प्राणियों के जीवन को देखकर वे मुक्ति मार्ग के पथिक व प्रदर्शक बने।]

ईस्वी पूर्व ५९९ मे जब चैत्र का मधुमास नव जीवन का सदेश दे रहा था, निर्मल आकाश मे शुक्ल पक्ष की त्रियोदशी का चन्द्रमा अपनी शुभ्र, शीतल किरणो से नव जीवन का स्वागत कर रहा था, प्रकृति मानो यह घोषणा कर रही थी कि 'हिसा की तमिस्रा मिटेगी और अहिसा का सर्वसुखकारी आलोक अवतरित होगा,' और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानव जीवन मे नव वसत उल्लास हमेशा-हमेशा के लिए आयगा।

तभी रानी त्रिशला प्रियकारिणी के सोलह स्वप्नो के बाद एक भाग्यशाली बालक माँ त्रिशला के गर्भ मे आया, उस दिन से राजप्रासाद मे सुख-समृद्धि की वृद्धि हो निकली। मानव ने ही नही, देवताओ ने भी स्वग से आकर हर्षोल्लास मे महीनो पहले से ही रत्नो की वृष्टि करना प्रारम्भ कर दी थी। इसलिए नवजात शिशु का नाम वर्द्धमान रक्खा गया। जब बालक का जन्म कुण्डग्राम नामक एक बस्ती मे शुभ चैत्र सुदी १३ को (ईस्वी सन् के ५९९ वर्ष पहले) हुआ, तब पिता सिद्धार्थ और माता त्रिशला ऐसे बालक को पाकर हर्ष विभोर की चरम सीमा पर पहुँच गये थे।

ऐसा अभूतपूर्व जन्म सुन कर स्वर्ग लोक से इन्द्र-इन्द्राणी भी अपने देव परिकर सहित कुण्डग्राम आये और नवजात शिशु का जन्माभिषेकोत्सव करने के लिए उन्होने एक नाटक रचा। विदेह के लोग

अपना अहो भाग्य समझकर खुशियाँ मना रहे थे। बालक वर्द्धमान राजकुमार थे, इसलिए वह महान नही थे। वह महान इसलिए थे कि उन्होने कई जन्मो से मृत्यु को जीतने की साधना की थी।

समय जाते देर नही लगती। वर्द्धमान भी बडे हुए। माँ-बाप ने अपने लडके के सामने शादी का प्रस्ताव रक्खा, तो वह बोले माँ! क्या देख नही रही हो कि दुनिया कितनी दुखी है, और धर्म की कितनी छीछालेदार हो रही है, लोग मोह-माया मे फँसे है। इस समय लोगो की भलाई के लिए सबसे ज्यादा जरूरत धर्म फैलाने की है। माँ ने बडे प्यार से समझाते हुए कहा—मै जानती हूँ कि तुम्हारा जन्म ससार के कल्याण के लिए हुआ, पर अभी तुम्हारी उम्र है कि तुम घर-गृहस्थी के सुख भोगो।

यह सुनकर वर्द्धमान को बडा दुःख हुआ। वह बोले माँ, तुम यह सब क्या कहती हो? इस देह का क्या भरोसा। तुम कुछ भी कहो, मुझसे ऐसा न होगा। महावीर का मन भोग में नही था। घर मे वह रहते थे, लेकिन ठीक वैसे ही जैसे जल मे कमल। वह देखते थे कि यह भी कोई जीवन मे जीवन है, जो रोग, शोक बुढापे से जर्जरित है, जिसमें पद-पद पर आकुलता हो और काल का आतक छाया हो। और थोडा अपना मतलब देखते थे और अपने लाभ के लिए बुरे से बुरा काम भी कर लेते थे। धर्म की जडे हिल गई थी और उनकी जगह स्वार्थ ने ले ली थी।

वह तो यह चाहते थे कि जीवन तो वही सार्थक है, जिसमे न रोग, न शोक हो, न सयोग हो, न वियोग हो; न बुढापा, न मरण हो। और वह जीवन जिसका अक्षत यौवन हो और शाश्वत सौन्दर्य हो। बालक वर्द्धमान का जन्म इस दिव्य जीवन का आनन्द पाने और उसे दुनिया मे बाँट देने के लिए ही हुआ था।

इसलिए जन्म से ही उनका ज्ञान विलक्षण था। वह दूर-दूर तक की बात जान लेते थे। उनके दिव्य ज्ञान की बात बहुत दूर-दूर तक फैल गई। हिमालय की शुभ्र शिखरो से वह टकराई और प्रतिध्वनित होकर सारे विश्व मे फैल गई। सजय और विजय नामक चारण योगियो का भी ध्यान वर्द्धमान की ओर आकृष्ट हुआ। वे आकाश मार्ग से उडकर कुण्डग्राम मे आये और ज्ञानपुंज शिशु वर्द्धमान के दर्शन किये तो उनकी मनोगत शकाओ का समाधान स्वत हो गया। इस बालक की विलक्षण प्रतिभा को देखकर को देखकर उन्होने उसका नाम सन्मति रक्खा।

भगवान महावीर वर्द्धमान के पिता राजा सिद्धार्थ तेईसवे तीर्थकर भगवान पार्श्वनाथ के अनन्य भक्त थे। श्रावक के बारह व्रतो को पालते थे। बालक महावीर पर उन सस्कारो का प्रभाव पडा, और आठ वर्ष की अल्पवय मे ही राजकुमार वर्द्धमान ने एक उपासक के व्रतो को धारण कर लिया। अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह परिमाण व्रतों को वे पालने लगे।

युवक होने पर महावीर को घर मे रहना भारी लगने लगा। उन्होने एक दिन अपनी माता से कहा कि मै घर-गृहस्थी से ऊब गया हूँ; मुझे आज्ञा दीजिए कि मै दीक्षा ले लूँ। माता दुखी हुई और उन्होने कहा कि घर छोड कर जाओगे, तो कहाँ ठिकाना लगेगा? तीस वर्ष की उम्र मे घर-द्वार छोडकर वे तपस्या के लिए चले गये। क्योकि उन को ससार की विषमता काटने के लिए दौडी। उन्होने पीछे मुडकर देखा ऋषभादि तीर्थकरो का आदर्श जीवन और सुखमयी काल उनके ज्ञान मे प्रत्यक्ष समा गया।

राजकुमार वर्द्धमान के मन पर 'सत्य, शिव, सुन्दरम्' का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वह वन की

ओर चल दिये। वन उनको इसलिये भाया कि मानव प्रकृति से दूर भटक गया था, इसलिए तो उसमे विषमता फैली थी। उन्होने कहा प्रकृति का सौन्दर्य, प्रकृति का सुफल और प्रकृति का सरस अमृत जन-जन को सुलभ है प्रकृति मे मानव शाति, समता और मुख से रहता था और अब भी रह सकता है। किन्तु मानव ने प्रकृति पर अधिकार करना चाहा, उसे अपने लोभ कषाय की पूर्ति का साधन बनाया और मालिक बनकर मालिकी के दुर्भाव से सबल और निर्बल की विषमता उत्पन्न हुई और फिर विपमता की खाई बढती गयी। कुमार वर्द्ध-मान इस खाई को कैसे बढने देते ? इसीलिए उन्होने नि सग और निष्प्ररिग्रह जन्मजात मानव का आदर्श जनता के सामने रक्खा और कहा हम किसी पर अधिकार नही करते, कोई वस्तु हमारी नही है। इसलिए ही हम स्वाधीन और सुखी है। वन मे उन्होने ऐसी तपस्या की कि उसका हाल पढकर रोगटे खड़े हो जाते है।

बारह वर्ष के इस लम्बे समय मे वह मौन व्रत पालते हुए एकाकी विचरण करके चेतन-अचेतन सम्पर्कों का सूक्ष्म अध्ययन करते रहे। वे महान मनो-विज्ञानी थे। उनके अन्तर मे मन. पर्याय ज्ञान चमक रहा था। यद्यपि मु ँह से उन्होने इस छद्मस्थ अवस्था मे एक शब्द भी नही कहा, परतु उनकी करनी स्वत ही ससार की विषमता मिटाने मे कार्यकारी होती गई। जो पूर्णज्ञानी पूर्ण पुरुष होता है, बही मानवता का आदर्श बनता है। महावीर पूर्ण पुरुष बनने की साधना मे सलग्न थे। उनकी वृत्ति अन्तर्मुखी थी, क्योकि उन्होने अपने अतर मे समता को जगाया था। तप की अग्नि मे अपने अतरग मैल को जलाकर सौ टच सोने के समान निर्मल और शुद्ध निकले क्योकि पूर्ण ज्ञानी पुरुष ही लोक को सही दिशा का भान करते है। इसलिए श्रमण निर्ग्रन्थ महावीर आत्मा को माँजने मे सदा जागरूक रहे। बारह वर्ष बाद उनकी तपस्या सफल हुई और ऋजुकला नदी के किनारे शाल वृक्ष के नीचे वैशाख सुदी १० के दिन उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हुआ। इस पूर्ण ज्ञान की अखड ज्योति के आगे सहस्राधिक सूर्य भी लज्जित हो गये।

केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद महावीर किसी एक जगह नही रहे। वे बराबर घूम-घूम कर उपदेश देते रहे। महावीर वडे प्रेम से सच्चे सुख और सच्ची शाति का रास्ता बताते थे। महावीर ने सबसे ज्यादा जोर अहिसा पर दिया। उन्होने उसे परम धर्म बताया '**अहिसा परमो धर्म.**' उन्होने कहा सब कोई जीवित रहना चाहता है, सबको अपनी-अपनी जिन्दगी प्यारी है, सब कोई सुखी रहना चाहता है, इसलिए किसी भी प्राणी को कष्ट नही पहुँचाना चाहिए। जो आदमी अपनी व्यथा को समझता है, वह दूसरो की व्यथा का अनुभव करे। इसलिए शात सयमी जीव दूसरो की हिसा करके जीना नही चाहते। उन्होने अहिसा की शक्ति बताते हुए यह भी कहा कि अहिसा से आदमी सुखी हो सकता है और अहिसा से ही ससार मे शाति बनी रह सकती है।

उन्होने सबकी भलाई के लिए एक मत्र दिया, वह था—'जिओ और जीने दो', इसका मतलब यह है कि हम अपनी तरह दूसरो का ध्यान रक्खे और उन्हे वे सब सुभीते दे, जो हम अपने लिए चाहते है।

अहिसा को समझाते हुए उन्होने बताया कि अपनी बुराइयो को जीतना, अपनी इन्द्रियो पर काबू रखना और किसी भी चीज से मोह न रखना सच्ची अहिसा है। अहिसा के साथ-साथ उन्होने सयम, तप और त्याग पर बडा जोर दिया। उन्होने कहा कि इसके बिना अहिसा नही सध सकती।

उन्होने पाँच महाव्रतो की महिमा बताई और लोगो से कहा जो अपनी एव समाज की भलाई

चाहते है, उन्हे इनका पालन अवश्य करना चाहिए। पहला व्रत है–अहिसा यानी किसी जीव को न सताओ। दूसरा सत्य हमेशा सच बोलो। तीसरा अस्तेय चोरी न करो। चोथा ब्रह्मचर्य सयम रक्खो। पाँचवा अपरिग्रह आवश्यकता से अधिक चीजे अपने पास न रखो और उन चीजो के मोहजाल मे न फँसो। उन्होने यह बताया कि दुनिया मे दुःख की जड़ अहकार है। मैं जो कहता हूँ, वही सच है इस बात पर से बड़े झगड़े होते है। उन्होने दुनिया को एक बहुत बड़ा सिद्धांत दिया, जिसे अनेकात या स्याद्वाद कहते है। इसका अर्थ है कि हम जो कहते है, केवल वही सच नही, जो दूसरे कहते है, उसमे भी सचाई है। एक ही चीज के कई पहलू होते है, इसलिए किसी को अपनी बात पर हठ नही करना चाहिए। आदमी की निगाह और दिल को बड़ा करने का यह सबसे अच्छा रास्ता है। उन्होंने यह भी कहा कि भोग भोगना बुरा नही है, भोगों से आसक्त होना बुरा है।

दो मुक्तक

'तन्मय' बुखारिया

जीवन-रहस्य सागर-सा गहरा है।
सपनों के तट पर सच आ ठहरा है।
अद्वैत-द्वैत मे चेतन उलझ गया,
खुद के दरवाजे दु ख का पहरा है।

प्यार इनसान को इनसान बना देता है,
मृत्यु के नाम को निर्वाण बना देता है;
प्यार को प्यार करो, साधना साधो, पूजो,
प्यार पत्थर को भी भगवान बना देता है।

निर्वाणोत्सव और जैन एकीकरण

श्रीमती कमल वेद

[वर्तमान युग की विभिन्न समस्याओ मे से जैन एकता भी एक विद्रूप समस्या है। केवल चर्चाओ से जैन एकीकरण सम्भव नही है। हम उसके लिए अपने जीवन मे कितनी उदारता और संयम बरतते है, यही मुख्य है।]

समय की डोर छूट रही है

निर्वाणोत्स वर्ष १३ नवम्बर सन् १९७४ से शुरू हुआ था। करीब आधा वर्ष बीतने को है, सभवतया सपूर्ण वर्ष भी इसी प्रकार व्यतीत हो जायगा। लगता है समय की डोर हमारे हाथो से छूटने को है, पर हम जहाँ के तहाँ है। हमारे आचरण मे, व्यवहार मे, मन मे, कार्यो मे, कही कोई तबदीली नही आयी है और ना ही ऐसी अपेक्षा भविष्य के लिए की जा सकती है।

स्वाभाविकता की ओर

कारण, हम जो दीखते है, वह है नही। हमारा अधिकाश समय नकली मुखौटे के साथ व्यतीत होता है, स्वाभाविकता मे जीना हमारे स्वभाव को रास नही आता। यह कृत्रिमता की बीमारी ही हमारा खून सोख रही है। जो कहते है, वह हमारी करनी से कोसो दूर है। यदि वास्तव मे हम उस महान तीर्थकर के अनुयायी है, तो सर्वप्रथम हमे अपनी दृष्टि अपने स्वाभाविक स्वरूप की ओर मोड कर अपने आचरण के द्वैत का त्याग करना होगा।

मन-भेदों की दीवारें

कहाँ तो भगवान महावीर का दिव्य सन्देश 'जिओ और जीन दो' 'मित्ती मे सव्व भूतेपु बैर मज्झ न केणई' जिसमे प्राणी मात्र के प्रति प्रेम की शिक्षा है, किसी के प्रति विरोध, ईर्ष्या और बर भाव का निपेध है। कहाँ हम मुट्ठी भर जैन भाई है,

जो अपने ही घर मे विभिन्न फिरकों, पथों और मतो मे बटे हुए है। निर्वाणोत्सव के इस पवित्र वातावरण मे जैन एकीकरण की आवाज तो बडी जोर-शोर से उठ रही है, किन्तु क्या अन्दर के मन भेदो की दीवारे हमारे द्वारा तोडी जा सकी है ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है ।

धर्म, सम्प्रदाय नही

धर्म नीव है और सम्प्रदाय उसकी अनेक राहे। आज हमने धर्म की अन्तरात्मा को विस्मृत कर दिया है और अपने-अपने सम्प्रदाय के विकास मे लगे है । धर्म के नाम पर अनेक साम्प्रदायिक झगडे इसी कारण है। आपस के बैर भाव, मन-मुटाव ऊँच-नीच, ईर्ष्या द्वेष और घृणा की भावनाओ की समाप्ति के लिए सद्विवेक और व्यापक सूझ-बूझ को जागृत करने की आवश्यकता है । इस पुनीत पर्व पर वितृष्ण, वीतराग, महावीर के स्मरण के साथ ही साथ लोक जीवन मे उनके सिद्धातों का प्रवेश बहुत आवश्यक है ।

मूल निर्दोष

अकेले दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे ही ८४ मान्यता भेद माने गये है, जबकि मुख्य भेद नग्नत्व और वस्त्रादि ग्रहण ही है। इसके अतिरिक्त जैन समाज के विभिन्न सम्प्रदायो की सख्या भी कम नही है। इनमे साधारण से आचार और विचार भेद के कारण आपसी तनाव और सघर्ष वर्षो से चले आ रहे है , जबकि धर्म के मूल मे कही कोई विषमता नही है, फिर भी एकता के नाम पर सब दूर-दूर है ।

व्यवहार का द्वैत

कितनी बडी भूल हम वर्षो से करते आ रहे है। महावीर के अनेकात को भूल कर एकात मे भटक रहे है, अहिसा की बात तो करते है, पर हिसा से बचते नही, अपरिग्रह की चर्चा करते है, पर सग्रह वृत्ति छोडते नही । जैन धर्म मे विभिन्न आम्नायो पर कोई रोक नही है, चाहे आप श्वेताम्बर आम्नाय को माने, चाहे दिगम्बर को या अन्य किसी को, सभी को विचार स्वातन्त्र्य है। जैन धर्म मे सभी धर्मो का समन्वय है, किंतु विभिन्न सम्प्रदायो के चन्द सज्जनो ने अपनी व्यक्तिगत थोथी प्रतिष्ठा के लालच मे व्यक्ति-व्यक्ति के बीच खाई उत्पन्न कर दी है।

एकता की शक्ति

आज हम लोकतात्रिक व्यवस्था में जी रहे है। युग का तकाजा है कि बिखरी हुई शक्तियों को केन्द्रित कर कार्य मे लगाया जाय। बिखराव मे शक्ति का मूल्य कम हो जाता है। जब हाथ की पाँचो अगुलियाँ मिलकर कार्य करती है, तो कार्य कितना सहज और सुलझ हो जाता है ? एक अंगुली अपने आप मे पगु है। ठीक यही स्थिति जैनियो की भी है। विभिन्न सम्प्रदाय और पथो मे सारी शक्ति बिखरी हुई है, जबकि शक्ति का ठीक-ठीक उपयोग समन्वय मे है।

सद्भावना की मैत्री

भगवान महावीर के उपदेशो मे विश्व धर्म और मानव धर्म का सगीत प्रस्फुटित हुआ था। उन्होने अपनी गहरी दृष्टि से व्यक्ति के अन्दर पैठे हुए बैर को जाँचा था, तभी तो उन्होंने कहा 'दो विरोधियों के बीच भी मैत्री हो सकती है', यदि वे एक दूसरे को समझे और सद्भाव से काम ले।

एक उदार दृष्टिकोण

महावीर की अनेकात दृष्टि वैचारिक सहिष्णुता और उदारता पर आधारित है। ससार की प्रत्येक वस्तु अनेक गुण धर्मो से युक्त है। यदि हम एक ही गुण पर दृष्टि डालकर उसे एक ही रूप मे देखेगे, तो

संघर्ष की निश्चय ही सभावना होगी। जैसे पाच अधो ने अपनी अपनी हथेली की आँखो से हाथी को देखा और अपने अनुभव की एकागी दृष्टि के आधार पर हाथी का स्वरूप, सूप, खभा, दीवार आदि बता कर लगे झगडने। समग्र हाथी का रूप उनकी दृष्टि से परे था, इसलिए संघर्ष को स्थान मिला। ठीक यही स्थिति आज हमारी हैं। हमारे पास आँखे है, विवेक है, सूझ-बूझ है, किन्तु एकागी दृष्टि ने हमे दूसरे के प्रति अनुदार बना दिया है।

अहिसा की सूक्ष्मता

वैसे तो विश्व का कोई धर्म हिसा का पोषक नही है, किंतु जैन धर्म और महावीर की अहिसा बड़ी सूक्ष्म है। उसमे केवल प्राणी वध का न होना ही अहिसा नही है, वरन् अपने अभिप्राय मे भी किसी को मारने, सताने, दुखी करने जैसा कोई भी दुष्कृत विचार का न होना अहिसा है। आत्मा मे रागादि दोपो की उत्पत्ति होना हिसा है। स्वभाव मे क्रमश. वीतरागता लाना, महावीर की अहिसा की सच्ची और उदात्त अभिव्यक्ति है। साथ ही उसकी व्यावहारिकता, उपयोगिता और महत्ता का भी उन्होने उल्लेख किया है। जब यह वीरता और पुरुषार्थ मे सम्मिलित हो जाता है, तो एक अनुपम वस्तु वन जाती है।

महावीर का परिग्रह

आधुनिक समाजवाद की दृष्टि से महावीर की सबसे बडी देन है अपरिग्रह। समाज के अस्तित्व और स्वाधीनता की रक्षा तभी हो सकती है, जब मानव अपरिग्रहवाद के मार्ग पर चले। आवश्यकतानुसार ग्रहण करे, अधिक का सचय न करे, तो सामाजिक विषमता और संघर्ष बहुत कुछ समाप्त हो सकता है। स्वार्थ भी एक प्रकार का परिग्रह ही है। समाज मे चारो ओर स्वार्थ का बोलबाला है, लोभ सिर पर चढकर बैठा है। जब तक धन का स्थान गौण और मनुष्य का स्थान मुख्य नही माना जायेगा, तब तक परिग्रह उसे डसता रहेगा। महावीर तो इससे भी आगे बढे है, उन्होने क्रोध, मान, माया सभी को परिग्रह कहा और इन्हे त्यागने का उपदेश दिया।

साम्प्रदायिक एकीकरण

जब हम भगवान महावीर के उपदेशो का आद्योपात विवेचन करते है, तो उनके आगे हम बहुत ओछे और बौने पडते है। जैन एकता का यह अर्थ कदापि नही है कि जैन धर्म के सभी सम्प्रदाओ का विलीनीकरण हो जाय। ऐसा होना असभव है यह तो बहुत दूर की बात है, किन्तु परस्पर समन्वयीकरण तो हो ही सकता है और होना भी चाहिए। कम से कम आचार-विचार की सहिष्णुता रखकर एकीकरण अवश्य हो सकता है। यही वर्तमान युग की माँग है। इसमे समाज के प्रत्येक व्यक्ति, नारी, युवा, साधु-सन्त सभी का सहयोग अपेक्षित है।

卐

अपने दु.खों और सुखो का कर्ता और भोक्ता यह आत्मा स्वयं ही है। सुमार्ग पर चलने वाला आत्मा अपना मित्र और कुमार्ग पर ले जाने वाला आत्मा अपना शत्रु है।

धर्मचक्र : एक जागृति

हुकमचन्द जैन

[धर्मचक्र का प्रवर्तन जन-जागरण तथा भलाई के लिए हुआ था। मनुष्य का जीवन तरह-तरह की बुराइयों, व्यसनों से भरा हुआ है। उन बुराइयों को दूर करने में धर्मचक्र जन-जागरण के सांस्कृतिक उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।]

क्रांति का समय उपस्थित है। धार्मिक क्रांति आत्म शुद्धि हेतु, शांति लाभार्थ स्वरूप चिनगारी बनकर अन्तर्तम से निकली, प्रज्ज्वलित हुई, प्रकाश किरणे धर्मचक्र के रूप मे चक्कर लगाने लगीं। भारत की पवित्र भूमि पर, जहाँ सम्मेलन है विश्व की अधिकाधिक जातियो का, छटपटाती, भटकती आत्माओ को दिशादान मिला, बंधुत्व जागा और परिव्याप्त हुआ अखिल विश्व मे।

आज सारा विश्व अनेकानेक समस्याओ से ग्रस्त है, सत्रस्त है—भय से आक्रात है। सर्वत्र मानसिक तनाव, अशान्ति, विद्रोह, भय, आतक आदि कुत्सित धारणाओ का साम्राज्य है। ज्ञानी, विज्ञानी धनी, मानी आदि चिन्तित है, बैचैन है—उन समस्याओ के निराकरण के लिये। पथ भ्रष्ट हो रहे है-अज्ञान से, पथ व्यामोह से, भौतिकता से। शाति की खोज मे सलग्न है विश्व के प्राणी। निश्चितता नही है शाश्वत सुख प्राप्ति की।

वैज्ञानिक युग का वरदान भौतिकता है। निष्कर्षत भौतिकता ही परिव्याप्त अव्यवस्था की जननी है। भौतिकवादी चश्मा चढ जाने के कारण ही दृष्टि दोष उपस्थित हुआ है। मिथ्यात्व (उल्टी मान्यता) या ना समझी ही कुमार्ग पर ले जाने वाली है। हमने भोग पदार्थो मे ही सुख की कल्पना कर ली है; पर यह सुख नही सुखाभास है। सच्चा शाश्वत सुख तो निर्विकल्प अवस्था मे है।

निर्विकल्प अवस्था तक पहुँचने का मार्ग मिल गया है, पर अन्तर्तम से श्रद्धा का आह्वान करना होगा, उसे अपने साथ रखना होगा और सकल्प करना होगा कि लक्ष्य प्राप्ति तक सतत प्रयत्न-शील रहेगे और इस पथ पर अपने" " चिह्न छोड जायेगे ।

भगवान महावीर के २५०० वे निर्वाणोत्सव की पुनीत वेला आपसे अपेक्षा करती है कि अपने आप को पहचानिये, अपने स्वरूप का निर्धा-रण कीजिए । कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान अपने विवेक से कीजिए । यदि कही परेशानी दिखे, तो महावीर रूपी दीपक अपने मनश्चक्षुओ के सामने प्रज्वलित कीजिए । आपकी सारी शकाएँ, कुधारणाएँ उसी प्रकार विलीन हो जाएंगी जिस प्रकार प्रात सूर्योदय होने पर घोर तिमिर नष्ट हो जाता है । यथा–

जिनवर की स्तुति करने से,
चिर सचित भविजन के पास ।
पल भर मे भग जाते निश्चित,
'इधर–उधर अपने ही आप ।।
सकल लोक मे व्याप्त रात्रि का,
भ्रमर सरीखा काला-ध्वान्त ।
प्रात रवि की उग्र किरण लख,
हो जाता क्षण मे प्राणान्त ।।
(भक्तामर काव्य)

महावीर की जीवन रेखा खीचना साधारण बात नही है । उनके जीवन को अपनी शब्द-वर्ग-णाओ मे आवद्ध नही कर सकते । जिस प्रकार समुद्र अथाह है, उसी प्रकार महावीर का जीवन भी अथाह एव अगम्य है । केवली और श्रुत केवली के विषय को वर्तमान मनीषी समाज ने अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा महावीर जीवन झाँकियो को जन-समुदायो के सम्मुख प्रस्तुत किया है । आप गहनता-मे मत जाइये, किनारे पर बैठ करके ही जितने रत्न प्राप्त कर सके, कीजिये ।

उपलब्ध सामग्री को प्रमाण मानकर मै भी अपनी मन्द बुद्धि द्वारा महावीर के जीवन को आपके सम्मुख उपस्थित कर रहा हूँ । तीर्थंकर महावीर उस समय जन्मे थे, जब युग अधकार की गलियो मे भटक गया था । उनका जन्म प्राणी मात्र को वर-दान सिद्ध हुआ । महावीर ने देखा, मानवता पर दानवता सवार है । महावीर जन्म से ही सन्मति थे, अत विवेक जागा और दृढ सकल्प करके बीडा उठाया, प्राणिमात्र की रक्षा करने का । वे जन्म से ही असाधारण बल के धनी थे, अपूर्व साहसी थे, प्रतिभावान और ज्ञानी थे । उन्होने प्रचलित ५ नामो को अपने सत्कार्यो से सार्थक किया था ।

महावीर का हृदय दहल उठा, करुण चीत्कारो से । उन्होने अनुभव किया कि ससार दुख मे है, समाज बुराइयो से ग्रस्त है । बुराइयो का निराकरण के लिए उन्होने महल त्याग दिया । उन्होने माता त्रिशला के वात्सल्य की परवाह न कर पिता के प्यार को ठुकरा कर सन्यास धारण किया । केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् जन कल्याण के लिए धर्मचक्र (समवशरण) निकाला । स्थान-स्थान पर अमृतमयी उपदेश (धर्मोपदेश) हुए । 'जिओ और जीने दो' के दिव्य सदेष के साथ अहिसा, अपरिग्रह आदि सिद्धातो का प्रतिपादन किया । तत्कालीन समाज ने महावीर को महावीर माना और उनके उपदेशो को श्रवण कर उनके अनुयायी बनकर प्रत्यक्ष धर्म लाभ लिया ।

वर्तमान मे भी वैसी ही विषम परिस्थितियाँ है, जैसी कि महावीर के जन्म के पूर्व भी । पचमकाल के दुष्प्रभाव से महावीर जैसे महामानव पृथ्वी पर अवतरित नही होते । अत वर्तमान मानव को उनके (महावीर के) आदर्श ही दिशाज्ञान के लिए पर्याप्त होगे । जनजागृति, धार्मिक जागृति हेतु धर्मचक्रो की योजना स्तुत्य है । हमे धर्मचक्रो के अतीत को मानना होगा और अतीत की कल्पना करनी होगी, तभी कल्याण पथ की ओर अग्रसर हो सकेंगे ।

★

श्री दि. जैन परवार सेवा समिति इन्दौर

कार्यकारिणी १९७५

अध्यक्ष
श्री शिवरतन कोठारी

उपाध्यक्ष
श्री रमेशचन्द्र योगेन्द्र

कोषाध्यक्ष
श्री केवलचन्द जैन

मन्त्री
डॉ. जी सी. जैन

सहमन्त्री
श्री हुकुमचन्द जैन

प्रचारमन्त्री
श्री सुरेन्द्र कुमार जैन
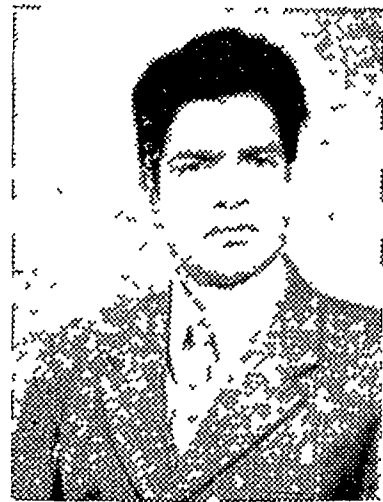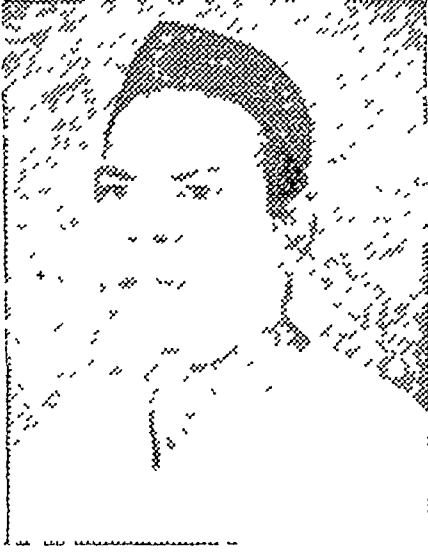
सदस्य
श्री गोटूलाल जैन

सदस्य
श्री सोनेलाल जैन

सदस्य
श्री रमेशचन्द बाँझल
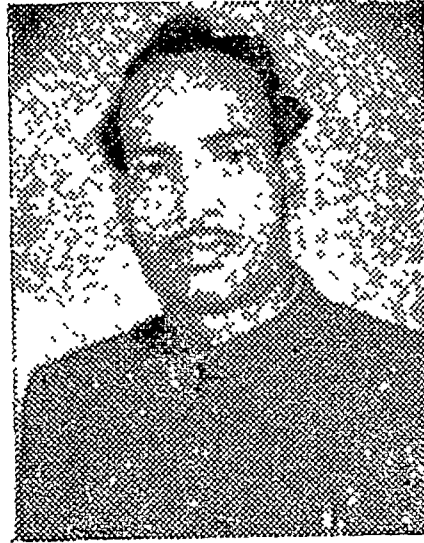
सदस्य
श्री बाबूलाल सुपारी वाले

सदस्य
श्री लखमीचन्द जैन

सदस्य
श्री हीरालाल रावत

सेवा के क्षण

श्री देवेन्द्र कुमार जैन जरूआ खेडा निवासी उपचार के पहले एव बाद मे कृत्रिम पैर से चलते हुए

(कृपया पृष्ठ ६९ देखिये)

सेवा के क्षण एवं नम्र निवेदन

श्री दि जैन परवार सेवा समिति इन्दौर, लगभग पिछले दो वर्षो से असहाय लोगो एव रोगियो की सेवा कर रही है। अभी हाल ही मे श्री देवेन्द्र कुमार जैन जरूआ खेडा निवासी का इलाज का एव रहने का सम्पूर्ण व्यय पिछले छ माह से उठा रही है।

श्री देवेन्द्र कुमार जैन को दिनाक २३-१०-७५ को एक रेल दुर्घटना मे अपने दोनो पैरो को खोना पडा था। दिनाक ११-१२-७५ को श्री देवेन्द्र कुमार को सेवा समिति ने डॉ **जी सी. जैन** अस्थि रोग विशेषज्ञ इन्दौर के नर्सिग होम मे भरती किया। अभी तक डॉ जी सी जैन ने ६ आपरेशन नि शुल्क किये है।

सेवा समिति ने श्री देवेन्द्र कुमार जैन को दाये पैर मे कृत्रिम पैर लगा दिया है एव उनकी पत्नी श्रीमती मुन्नीबाई को सिलाई की ट्रेनिग भी दिलाई है जिससे वे अपने परिवार की आजीविका का निर्वाह कर सके। इसके लिए सेवा समिति उन्हे एक सिलाई मशीन भी भेट कर रही है।

श्री देवेन्द्र कुमार जैन के इलाज मे जिन महानुभावो एव सस्थाओ ने सहयोग दिया है समिति उनकी हृदय से आभारी है।

अपनी अमुल्य सेवाओ एव सहयोग के लिए समिति डॉ जी सी जैन, श्री गोटूलाल जैन, श्री गम्भीरमल जैन इन्दौर एव श्री कैलाशचन्द जैन सागर को भुला नही सकती।

श्री दि. जैन परवार सेवा समिति इन्दौर, की समाज सेवी सस्थाओ एव महानुभावो से निवेदन करती है कि अपने अमूल्य आर्थिक सहयोग एव आशिर्वाद से समिति का उत्साह बढावे जिससे समिति ऐसे अनेक असहाय लोगो की सेवा कर सके।

शिवरतन कोठारी
अध्यक्ष
श्री दि. जैन परवार सेवा समिति, इन्दौर